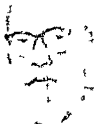


મદ્રાસ-દયાસદનના ઉદ્‌ઘાટન પ્રસંગે ભૂતપૂર્વ ગવર્નર જનરલ શ્રી સી રાજગોપાલાચારીજી
પૂ પાદ આચાર્યદેવ શ્રીમદ વિજયલક્ષ્મણસૂરીશ્વરજી મહારાજના નતમસ્તકે આશીર્વાદ માગી રહ્યા છે



પ્રેરણાદાર
પૂ પા આચાર્યદેવ શ્રીમદ્ વિજ
લક્ષ્મણ સૂરીશ્વરજી મહારાજ

લેખક
નવાવસાની મધિકુત તિર
પૂ પન્યાસજી
શ્રી કીર્તિવિજયજી ગણિવર



સ્વ હેમકુંવરબહેન



[illegible]નિવાસી સ્વ શેઠ [illegible]ગવરજી માણેકચંદના ધર્મપત્ની
સ્વ હેમકુંવરબહેનના આત્માના શ્રેયાર્થે આ પુસ્તક
તેમના સુપુત્રો છોટાલાલ તથા ધીરજલાલ તરફથી
સપ્રેમ ભેટ [હાલ મુંબઈ]

णमो जिणाणं

आत्म-कमल-लब्धि-सूरीश्वरजी
जैन-ग्रन्थमाला का १८ वाँ पुष्प

आर्हत्-धर्म-प्रकाश

(जैन धर्म)

लेखक
व्याख्यान वाचस्पति कविकुल किरीट पू० पा० आचार्यदेव
श्रीमद्विजयलब्धिसूरीश्वरजी महाराज
के पट्टप्रभावक
दक्षिण दीपक पू० आचार्यदेव श्रीमद्विजयलक्ष्मणसूरीश्वरजी
महाराज
के शिष्यरत्न
कविकुल तिलक
पू० पन्यास जी श्री कीर्तिविजयगणिवर महाराज

सम्पादक
ज्ञानचन्द्र
विद्याविनोद

प्रकाशक
बी० बी० मेहता
श्री आत्म कमल लब्धि सूरीश्वरजी जैन ज्ञान मन्दिर,
६ ऐस लेन, दादर (पश्चिम) बम्बई २८

प्रथम संस्करण ५०००
द्वितीय संस्करण १०००

५०० प्रतियाँ—लाठी निवासी स्वर्गीय दोशी केशवजी माणिकचंद्र की धर्मपत्नी स्व० हेमकुँवर की आत्मा के श्रेयार्थ उनके सुपुत्र छोटालाल तथा धीरजलाल की ओर से सप्रेम भेंट।

आर्हत धर्म प्रकाश

गुजराती	प्रथम संस्करण	५०००
	द्वितीय संस्करण	१०००
	तृतीय संस्करण	२२५०
	चतुर्थ संस्करण	१७००
हिन्दी	प्रथम संस्करण	५०००
	द्वितीय संस्करण	१०००
तमिल		५०००
अंग्रेजी		१५०००
कनड्ड		१८०००
मराठी		५०००
तेलगु		१०००
		६०,०००

अनुवादक
न्यायाचार्य महेन्द्रकुमार शास्त्री

मुद्रक—बल्देवदास संसार प्रेस, काशीपुरा, वाराणसी।

विषय-सूची

	पृष्ठ
जैनधर्म	१–३
आश्चर्यजनक विशालता	४–७
जैन-साधु	८–१०
आत्मा	११–१४
कर्म	१५–२०
ईश्वर की उपासना	२१–२२
ईश्वर का कर्तृत्व	२३–२४
जैन	२५
गृहस्थ के व्रत	२६–३१
स्याद्वाद	३२–३६
षड्द्रव्य	३७–३९
जैन-तप	४०
ज्ञानक्रियाभ्यां मोक्ष	४१
रात्रिभोजन	४२–४४
आधुनिक विज्ञान	४५–५०
जैन धर्म अनादिकालीन है	५१
जगत की दृष्टि में	५२–५६
पुनर्जन्म के कुछ प्रमाण	५७–६४

प्राक्कथन

यह तो स्वाभाविक बात है कि, कोई भी व्यक्ति व्याधिग्रस्त स्थिति में आकुल व्याकुल बना हुआ अपनी रोग निवृत्ति के लिये आतुर बने बिना रहता नहीं, परन्तु जब तक उसकी चिकित्सा की योग्य साधन सामग्री उपलब्ध न हो, तब तक उसके मनोरथ सफल नहीं होते। इसी तरह से माँस, रुधिर और मल मूत्र जैसे अशुचि पदार्थों से भरे हुए दुर्गन्धि युक्त देह के कारागृह में जन्म जरा मृत्यु रूपी महारोग की पीड़ा से मुक्त होने की आतुरता मेधावी मानव प्राणी में होना स्वाभाविक है और उसके लिए अनेक तरह के विचार एवं उहापोह होना भी अनिवार्य है। मानववर्ग के इस प्रकार के सद्विचार को तत्त्वगवेषक वृत्ति (Philosophic attitude) कहते हैं। खासकर हमारे भारतवासियों में आत्मश्रद्धा के प्रबल संस्कारों के कारण उनके तत्त्वज्ञान में मनन मथन एवं अधिक प्रवेश होने से 'मुक्तिवाद' हमारे देश का महामंत्र बना हुआ है और भारत की चारों दिशाओं में "सा विद्या या विमुक्तये" का महावाक्य गूँज रहा है। परन्तु, मुक्तिमार्ग को निष्कण्टक, निराबाध और सुलभ प्राप्य बनाने में आर्हत् दर्शन (जैनदर्शन) को ही सर्वोच्च स्थान दिया जाता है क्योंकि मुक्तिमार्ग की सिद्धि के लिये व्यवस्थित और पद्धतिसर साधन-सामग्री की रचना सर्वाङ्ग सुंदर ढंग से जैसी इस दर्शन में पायी जाती है, वैसी अन्यदर्शनों में नजर नहीं आती।

यद्यपि अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह आदि पाँच मौलिक सिद्धान्त (Fundamental Principles) प्रायः सब ही दर्शन मानते हैं, परन्तु उनको जीवन में (Practicable in the life) चरितार्थ कैसे करना, उसका सरल और सिद्ध उपाय जैनदर्शन में बड़ा ही विशद् है। अर्थात् उत्तरोत्तर विकास श्रेणी (Evolutionary Spiritual ladder), जिसको जैन परिभाषा में 'गुणस्थानक' कहते हैं,

और जीवन की भिन्न भिन्न अवस्थाएँ जिसको मार्गणाद्वार (Classified groups) कहते हैं, बड़े ही मननीय और विचारणीय विषय हैं, जिनके अध्ययन से जैनदर्शन की विशेषता का स्वत अनुभव हुए बिना नहीं रहेगा।

जैन दर्शन का मन्तव्य है कि "युक्तिमाव मवेद्तत्त्व न च व युक्तिवर्जित" प्रत्येक विषय में युक्तिपूर्वक से समझाने की शैली बड़ी सुन्दर है। किसी भी कार्य में उसके साधक, बाधक, द्योतक, घातक, पोषक, शोषक आदि सब ही विषयों पर गम्भीर विवेचन जैनदर्शन में पाया जाता है। इसका खास कारण जैन-दर्शन का सर्वाङ्गसुन्दर स्याद्वाद न्याय है, जो (Central Doctrine) केन्द्रित सिद्धान्त समझा जाता है, जिसके प्रयोग से वस्तुस्थिति का भिन्न-भिन्न दृष्टि से सर्वदेशीय सम्पूर्ण बोध होता है। इसलिए, इस स्याद्वाद को अनेकान्तवाद अथवा अपेक्षावाद भी कहते हैं। पाश्चात्य विद्वानों (Western Scholar) ने तो इस स्याद्वाद के सिद्धान्त की मुक्तकण्ठ से प्रशंसा की है। उनकी तो यहाँ तक [illegible] है कि, यह संसार में संघटन साधने की महाशक्ति (Unifying Force) है, जिसके प्रयोग से संसारभर के समस्त पारस्परिक विचारविरोध के [illegible] का संतोषजनक समाधान होता है। इसलिए, स्याद्वाद को (Com[illegible]sing System of Philosophy) सुन्दर शान्तिकारक [illegible] है। डा० आईंस्टाइन जैसे संसार के सर्वोपरि विज्ञानवेत्ता के [illegible] (Theory of Pelativity) की मान्यता कितने ही [illegible] की छायामात्र है। कहने का सारांश यह है कि, [illegible] अनुत्तम साधन स्याद्वाद होने से, जैनदर्शन का समस्त [illegible] स्थान है। इस दर्शन में कपोलकल्पित कल्पनाओं ([illegible] Conceptions) अथवा भ्रमणाओं (Supe[illegible]) [illegible] मात्र भी स्थान नहीं है। जिस अमल विधान के [illegible] की व्यवस्था हो रही है, उस सुचारु शासन (Sy[illegible]ment) के मूल तत्त्वों (Substances) [illegible]

दर्शन भरा हुआ है। आधुनिक विज्ञानवेत्ता उसे (Rationalistic schooly of Philosophy) प्रमाणसिद्ध एवं हेतुवादी दर्शनशास्त्र कहते हैं। विज्ञान की कितनी ही विस्मयकारी शोध-खोजें (Scientific Researches) जो बाहर आती हैं, उनका वर्णन जैनसिद्धांतों में पूर्व से ही लिखा हुआ पाया जाता है—जैसे ध्वनि की गति, शक्ति और आकृति (Sound & its Velocity etc), ईथर (Ether) जैसे सहकारी तत्त्व की मान्यता, उद्योत (light) प्रभा, तम, छाया आतप आदि के परमाणु, पदार्थ का अंतरपारगमन (Inter penetration), वनस्पति की संज्ञाएँ (Instincts & feelings) जल के (Hydrogen and Oxygen) हायड्रोजन और ऑक्सीजन आदि तत्त्व तथा जलबिंदु के सूक्ष्म जन्तु और परमाणु (Atoms & Molecules) की मान्यता आदि अनेक वैज्ञानिक विषयों का विस्तृत वर्णन सैकड़ों वर्षों के प्राचीन जैनशास्त्रों में पाया जाता है। अभी तक विज्ञान की अति सूक्ष्म अन्तिम मान्यता इलेक्ट्रोन और 'प्रोटोन' (Electrons & Protons) तक गयी है। परन्तु, जैन-दर्शन के कार्मिक वर्गणा के परमाणु (Karmic molecules) जिनको अतीन्द्रिय ज्ञानदर्शनग्राह्य माने हैं, उनको तो 'अल्ट्रा माइक्रो मोलेक्यूल्स' कहना अत्युक्ति नहीं है क्योंकि इलेक्ट्रोन प्रोटोन से कई गुने सूक्ष्म हैं, जो किसी प्रकार के सूक्ष्मदर्शक यंत्र (Microscope) से भी दृष्टिगोचर नहीं हो सकते। इसी प्रकार इस दर्शन का आत्मवाद, तत्त्ववाद, क्रियावाद, तर्कवाद, न्यायवाद आदि सारे विषय इतने गहन और सूक्ष्म हैं कि, विचारशील विद्यार्थी को इसके अध्ययन से सहज ही विश्वास हो जाता है कि, इस दर्शन के नियामक महारथी एवं सूत्रधार केवल महामेधावी और प्रज्ञा प्रौढ़ ही नहीं थे, परन्तु सर्वज्ञ और सर्वदर्शी थे—अन्यथा ऐसी प्ररूपणा असम्भव होती। भले ही सामान्य वर्ग के लोग जैन-दर्शन का महत्त्व न भी समझें परन्तु बुद्धिवादी वर्ग (Intellectual class) तो इसकी तरफ बड़ा आकर्षित हुआ है। और, उसकी रूपरेखा (Outlines) समझने की

उनमें बड़ा जिज्ञासा प्रकट हुई है। हमारी सभा 'जैन मिशन सोसाइटी' के पास दूर दूर देशान्तरों के कई लोगों की जैन साहित्य के लिये माँग आ रही है परन्तु जैन दर्शन के भिन्न भिन्न विषयों का निष्कर्षरूप (Nutshell form) एक छोटा निबन्ध हमारे पास तैयार न होने से हमारे सामने उनकी माँग पूरी करने का प्रश्न था। दैवयोग से इस वर्ष हमारे नगर के पुण्योदय से, महान् प्रभावशाली, प्रखर वक्ता, पूज्य आचार्य महाराज श्री श्री १००८ श्रीमद्विजयलक्ष्मणसूरीश्वरजी महाराज का चातुर्मास हुआ और उनके विद्वत्ता से भरे हुए व्याख्यान श्रवण करने से यह भावना हुई कि, उन श्रीजी से ऐसा निबन्ध प्रकाशित करने की प्रार्थना की जावे। तदनुसार हमने प्रार्थना की और संतोषजनक प्रत्युत्तर मिला। अर्थात् उन्होंने अपने विद्वान् शिष्य पंन्यास श्री कीर्तिविजयजी गणिवर को इस बारे में संकेत किया। पूज्य कीर्तिविजय जी ने उनकी आज्ञानुसार सरल ढंग से और सुन्दर शैली से सब मौलिक विषयों का साररूप यह निबन्ध तैयार किया। इसमें प्रतिपादन बहुत ही युक्तिसंगत एवं बुद्धिगम्य है, जिससे आम प्रजा खूब लाभ उठा सकती है। पंन्यासजी के लिये दो शब्द प्रशंसा के कहे बिना रहा नहीं जाता क्योंकि कुछ दिनों तक उनश्री के सत्संग का लाभ और उनके प्रशस्त पुण्योदय का अनुभव हुआ है। वे बड़े कार्यकुशल और कुशाग्र बुद्धिसम्पन्न हैं। वक्तृत्वशक्ति के साथ ही साथ लेखनशक्ति भी बड़ी प्रबल है और जैन मार्ग-प्रभावना तथा धर्म प्रचार के लिये बड़ी उत्कंठा रखते हैं और उत्साहपूर्वक सतत प्रयत्न शील रहते हैं। उन्होंने यह निबन्ध लिखने के लिये जो परिश्रम उठाया है, उसके लिये धन्यवाद के पात्र हैं। मुझे आशा है कि पाठकवृन्द इस निबन्ध को आद्यन्त पढ़कर जैनधर्म का रहस्य समझने के साथ ही साथ आत्मविकास का यथार्थ लाभ उठावेंगे।

श्री पुडल्तीर्थ
Red Hills
P O Polal(Madras)
Dated 1 1 1954

धर्मानुरागी
ऋषभदास

भूमिका

एक साधारण व्यक्ति की बात तो जाने दीजिये, पढ़े लिखे और भारतीय साहित्य से परिचय का दावा करनेवाले व्यक्ति भी जैन-साहित्य के सम्बन्ध में जो धारणा रखते हैं, उसकी अपेक्षा जैन साहित्य कहीं अधिक विशाल है। साहित्य, व्याकरण, दर्शन, न्याय, गणित, ज्योतिष, कहिए ज्ञान का कोई भी अंग जैन-आचार्यों की लेखनी से अछूता नहीं रहा। जहाँ तक ज्ञान का सम्बन्ध है, अपने आचार विचार में कट्टर रहते पर भी, जैन आचार्यों ने ज्ञानोपासना में कभी अपनी दृष्टि संकुचित नहीं रखी—जैनेतर ग्रन्थों पर भी उन्होंने अपनी लेखनी उठायी है, उनकी टीकाएँ लिखी हैं और जैनेतर शास्त्रों को भी अपने भंडारों में शताब्दियों तक रक्षा की है।

इन बाद के रचे गये जैन-ग्रन्थों के अतिरिक्त जैन सिद्धान्तों के मूल प्रमाण रूप आगम भी ४५ हैं—११ अंग, १२ उपांग, ६ छेद, ४ मूल, २ चूलिका तथा १० प्रकीर्णक। इन पर निर्युक्ति, चूर्णि, भाष्य तथा टीकाएँ हैं। इस प्रकार सब मिला कर पूरा जैन साहित्य इतना विशाल है कि, उसके सर्वांग ज्ञान की कौन कहे, एकांगी ज्ञान भी पूर्ण रूप से प्राप्त करना एक बड़े परिश्रम और अध्यवसाय का कार्य है।

जैन धर्म की यह विशेषता है कि, यह इसी भारतवर्ष के आर्यक्षेत्र में उद्भूत हुआ, यहीं उसने अपने अच्छे बुरे दिन देखे और समय-समय पर जब भी दीप धीमा हुआ, यहीं उसके २४ तीर्थङ्करों ने उसे पुनः प्रदीप्त किया।

अंतिम तीर्थंकर महावीर स्वामी के काल में भारत में श्रमण-सम्प्रदाय से सम्बन्धित ६ धर्म थे, उनमें से एक बौद्धों को छोड़कर शेष सभी विलुप्त हो गये और वैदिकों ने उनको आत्मसात कर लिया। रही बौद्ध धर्म की बात—उसे भी भारत भूमि छोड़ना पड़ा और विदेशों में जाकर देश-काल के अनुरूप अपने में परिवर्तन करना पड़ा। पर, जैन धर्म ही एक ऐसा

अक्षुण्ण बना रहा, जो समय के सैकड़ों उतार चढ़ाव को सहकर भी इसी भूमि में फलता फूलता रहा। उसकी इस स्थिरता का कारण निश्चय ही उसका साहित्य, उसकी विचारधारा, उसकी कर्मठता और उसका दर्शन है।

अतः यदि कोई व्यक्ति सचमुच भारत के सांस्कृतिक इतिहास का अध्ययन करना चाहे तो उसके लिए जैन दर्शन और साहित्य का अध्ययन अनिवार्य होगा।

पर, एक तो अपनी विशालता के कारण और दूसरे प्राचीन ग्रन्थ संस्कृत तथा प्राकृत में होने के कारण, साधारण व्यक्ति के लिए उससे परिचय प्राप्त करना थोड़ा कठिन कार्य है। अतः आज सहस्रों ऐसी सुलभ और सरल प्रामाणिक पुस्तकों की आवश्यकता है जिसके द्वारा ज्ञान के गूढ़ रहस्य जन-साधारण तक पहुँच सकें।

मेरे पूज्य मित्र पन्यास जी श्री कीर्तिविजय गणिवर जी महाराज की यह कृति वस्तुतः इसी लक्ष्य से लिखी गयी है। उनमें जहाँ एक ओर शास्त्र के अभ्यास के फलस्वरूप विद्वत्ता है, वहीं साधु होने के फलस्वरूप परम्परा ज्ञान भी है। अतः पुस्तक अति संक्षिप्त होते हुए भी, जहाँ तक जैन दर्शन अथवा सिद्धान्त का प्रश्न है, अपने छोटे-से-छोटे, विवरण तक में पूर्ण प्रामाणिक है। उन्हें पढ़ समझ कर पाठक कह सकता है कि, अमुक बात ऐसी है और उसके कहने पर कोई भी विद्वान् उंगली नहीं उठा सकता।

पुस्तक हिन्दी में प्रकाशित हो रही है यह हिन्दी का सौभाग्य है। हिन्दी में श्वेताम्बर-साहित्य नगण्य है और जो है भी, उसका परिचय बहुत कम लोगों को है। प्रस्तुत पुस्तक निश्चय ही इस कमी को दूर करेगी और लोगों को जैन-दर्शन समझने में सहायक होगी।

दफ्तरीवाड़ी, चिंचोली, मलाड,
बम्बई ६४।
चैत्र शुक्ल १३, सं० २०१६ वि०

—ज्ञानचन्द
विद्याविनोद

महा प्रभाविक नवकार-मंत्र

नमो अरिहंताणं
नमो सिद्धाणं
नमो आयरियाणं
नमो उवज्झायाणं
नमो लोए सव्व साहूणं
एसो पंच नमुक्कारो,
सव्व पावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं,
पढमं हवइ मंगलं॥

ऊपर लिखे अनुसार नवकार मंत्र के नव पद हैं, यह नवकार मंत्र चौदह पूर्व का सार रूप है। यह मंत्र अचिन्त्य प्रभावशाली है। इसके प्रभाव से देव और दानव भी आकर्षित होते हैं। सब मनोरथ फलते (पूर्ण होते) हैं। विघ्न और विपदाएँ दूर-सुदूर भाग जाती हैं। उपसर्गों का नाश होता है। यह चिन्तामणिरत्न, कल्पवृक्ष तथा कामधेनु से भी अधिक इच्छाओं को पूर्ण करता है। इस महामंत्र के ध्यान से क्लिष्ट कर्मों का नाश होता है। सब प्रकार के पाप का नाश होता है। इस लोक और परलोक में सुख-सामग्री और अपूर्व ऋद्धि सिद्धि मिलती है। निकाचित और निविड़ कर्मों की निर्जरा होती है। जन्म-जन्म के पाप धुल जाते हैं। जन्म-मरण की बेड़ी कट जाती है। दुर्गति के घोर दुःख से आत्मा बच जाती है। आत्मा कर्म रहित होकर शुद्ध तथा निर्मल बनती है। प्रातःकाल के स्मरण से सारा दिवस मंगलमय बनता है। जनमते ही सुनाया जाय तो जन्म सफल

होता है। मरते समय स्मरण करने पर सद्गति प्राप्त होती है। इसके माहात्म्य का जितना वर्णन किया जाय थोड़ा है। नवकार मंत्र के एक एक अक्षर के जाप से भी असंख्य वर्षों के घोर कर्मों का नाश होता है। मन, वचन और काया से एकाग्रतापूर्वक इस मंत्र का खूब जाप करो इसके जाप में लवलीन बनो तन्मय बनो। निरंतर इसी की रट करो। चलते फिरते सोते बैठते इसी का स्मरण करो। फल की आकांक्षा न रखो।

आत्मिक गुणों की पराकाष्ठा पर पहुँचे हुए सर्वोत्कृष्ट सिद्ध तथा साधक गुणी पुरुषों की इसमें स्तुति है जिसमें गुण मात्र की पूजा ही समायी हुई है, जो व्यक्तित्व पूजन की संकीर्णता से दूर है तथा महासागर के समान विशाल है। आत्मा के उत्तरोत्तर विकास करने के संसार में जो ऊँचे पद हैं—उन पदों का ही इसमें प्रतिपादन है। इससे यह महामन्त्र सबके लिए समान रूप से श्रेयस्कर और कल्याणकारी है।

— * —

नमो जिणाण

आर्हत धर्म प्रकाश

जैन धर्म

विश्व के धर्मों में जैन धर्म का स्थान सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। जैन-धर्म अनादि कालीन है। यह बात हम 'जैन' शब्द से ही समझ सकते हैं। जैसे कि, 'जिन' अर्थात् 'राग द्वेषादीन् शत्रून् जयतीति जिनः' राग-द्वेषादि अंतरंग शत्रुओं पर जिसने विजय प्राप्त की है अर्थात् जिस आत्मा ने उन्हें जड़मूल से नष्ट कर डाले हों, वही आत्मा 'जिन' कहलाता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि वीतराग, सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान परमात्मा जिन कहलाते हैं।

उनके द्वारा प्ररूपित उपदिष्ट धर्म ही जैन धर्म कहलाता है। और, इसीलिए उनका अनुयायी वर्ग 'जैन' रूप से पहचाना जाता है।

'जिन' शब्द व्यक्तिवाचक नहीं, परन्तु जातिवाचक है। जातिवाचक शब्द अनादि कालीन होते हैं। जब 'जिन' शब्द अनादि कालीन है तो जिन प्ररूपित धर्म भी अनादि कालीन है यह बात स्वयंसिद्ध है। जिस प्रकार ईसा मसीह ने ईसाई धर्म शुरू किया, गौतम बुद्ध के द्वारा बौद्ध धर्म का प्रारम्भ हुआ, इसी प्रकार इतर धर्मों की भी किन्हीं विशिष्ट व्यक्तियों के द्वारा ही उत्पत्ति हुई है। परन्तु, जैन धर्म को किसी एक व्यक्ति ने शुरू नहीं किया। यदि उसे किसी एक व्यक्ति ने शुरू किया होता तो वह बौद्ध धर्म की तरह महावीर धर्म, ऋषभ धर्म इत्यादि संज्ञा द्वारा पहचाना जाता परन्तु यह महावीर धर्म या ऋषभ धर्म आदि शब्दों से न पहचाना जाकर जैन धर्म से ही पहचाना जाता है इससे हम यह समझ सकते हैं कि, जैन धर्म अनादि है।

जैन धर्मानुसार काल के दो विभाग होते हैं—(१) उत्सर्पिणी और (२) अवसर्पिणी। उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल में २४ २४ तीर्थंकर होते हैं। तीर्थंकर 'जिन', 'अरिहंत' 'जिनेश्वर' इत्यादि नामों से पहचाने जाते हैं। भूतकाल में इस प्रकार की अनंत चौबीसियाँ हो गई हैं और भविष्य में भी इस प्रकार की अनंत चौबीसियाँ होंगी। तीर्थंकर देव की आत्माएँ जन्म काल से ही विशिष्ट ज्ञानी और महासौभाग्यशाली होती हैं।

इन तीर्थंकर देवों की आत्माएँ राज्यपाट का त्याग कर वैभव विलास को छोड़, स्वयं दीक्षा (संन्यास) अंगीकार करती हैं। दीक्षा लेने के बाद वर्षों तक पूर्वसंचित कठिन कर्मों का क्षय करने के लिए घोर तपश्चर्या करते हैं। इस काल में वे कठिन अभिग्रह और विविध घोर प्रतिज्ञाएँ धारण करते हैं। अपने छद्मस्थ-काल में वे भयंकर उपसर्गों को अपूर्व क्षमा पूर्वक सहन करते हैं। सदैव आत्म ध्यान में लीन रहते हैं। ऐसी उत्कट तपश्चर्या द्वारा जन्म जन्मांतर के पापों का नाश कर डालते हैं। चिकने कर्मों को भस्मीभूत कर, शत्रु मित्र पर समभाव रखते हुए, वीतराग दशा को प्राप्तकर केवलज्ञान और केवलदर्शन को प्राप्त करते हैं। यह केवलज्ञान संपूर्ण ज्ञान है। उन ज्ञान और दर्शन द्वारा तीनों लोक के—स्वर्ग, मृत्यु और पाताल लोक के—तीनों काल के—भूत, भविष्य और वर्तमान काल के—समस्त भावों को अखिल विश्व के पदार्थों को तथा क्षण क्षण में परिवर्तित दुनिया को जानते और देखते हैं।

इन संपूर्ण ज्ञानी परमात्मा के ज्ञान से कोई वस्तु अज्ञात नहीं होती। कौन कहाँ से आया? कहाँ जायगा? अनंतकाल के पहले वह किन-किन अवस्थाओं का उपभोग कर रहा था? कब उसका उद्धार होगा? इत्यादि वस्तुएँ वे हस्तामलकवत् देखते और जानते हैं।

परमात्मा विदेहमुक्त और जीवन्मुक्त इस प्रकार दो तरह के होते हैं। जिनने ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अंतराय इन आत्मगुण

के घातक चार घातीकर्मों का जड़मूल से नाश कर डाला है, ऐसे परमात्मा जीवन्मुक्त चरम शरीरी होते हैं। इस जन्म के बाद में वे जन्म धारण नहीं करते। और, जिनके चार घाती और चार अघाती (नाम-कर्म, गोत्र कर्म आयुष्य कर्म और वेदनीय कर्म) कुल ये आठों कर्म जड़मूल से नष्ट हो गए हैं, वे निरंजन मुक्त परमात्मा अर्थात् सिद्ध परमात्मा कहलाते हैं। जीवन मुक्त-देहधारी (जिन-भगवन्त) परमात्मा अखिल विश्व के संपूर्ण स्वरूप को जानकर जगत के कल्याण के लिए समस्त संसार को कल्याण का सच्चा रास्ता बताते हैं। अहिंसा, सत्य अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह का पाठ सिखलाते हैं। आधि, व्याधि और उपाधि-रूप त्रिविध ताप से संतप्त जीवों को अमृतवाणी के प्रवाह द्वारा अपूर्व शान्ति प्रदान करते हैं। विश्वशांति का सच्चा सन्देश देते हैं। सच्चे सुख का भान कराते हैं। अज्ञान रूपी अंधकार को दूर-सुदूर हटा देते हैं और इन सबके बाद अन्त में मुक्तिपुरी के शाश्वत सुखों को पा लेते हैं।

⁂

आश्चर्यजनक विशालता

जैन धर्म के सिद्धान्त वीतराग और सर्वज्ञ द्वारा प्ररूपित है, इसलिए ये (असकुचित) विशाल तथा सत्यमूलक हैं और इसी से उनकी निर्दोषकारिता सिद्ध होती है। यह धर्म छोटे-से छोटे प्राणी की भी रक्षा करने का आदेश देता है।

जैन सिद्धान्त का कथन है कि, जगत के सभी प्राणी (जीव) जीवित रहने की इच्छा रखते हैं। किसी को मृत्यु इष्ट नहीं है। सबको सुख इष्ट है और दुःख अनिष्ट है। जिस प्रकार अपूर्व ऋद्धि सिद्धि में मग्न रहने वाला इन्द्र भी जीवित रहने की आशा रखता है, उसी प्रकार विष्टा में रहने वाला कीट विष्टा में रहकर भी जीने की इच्छा रखता है। दोनों मरने से समान रूप से डरते हैं। इसलिए, मानव मात्र को हरेक प्राणी की रक्षा करनी चाहिए—चाहे वह एकेन्द्रिय हो, दो इन्द्रियों वाला हो, तीन इन्द्रियोंवाला हो, चार इन्द्रियोंवाला हो या पंचेन्द्रिय हो—पशु हो या मनुष्य हो। एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक तमाम प्राणियों की रक्षा करो। *पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति में भी जान है।* जैसी हमारी आत्मा है, वैसी ही उनकी है। जीव का धर्म संकोच विकासशील है। कीड़े की आत्मा और कुंजर की आत्मा में बिल्कुल अंतर नहीं है। कुंजर की आत्मा ही कर्मबंध के कारण किसी समय कीड़ा रूप हो सकता है, पृथ्वीकायिक जीव, अपकायिक हो सकती है अथवा नरक आदि गतियों का अनुभव कर सकती है। इसे हम इस प्रकार कह सकते हैं कि, कर्मबंध के कारण वही आत्मा एकेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक जीव योनि धारण करती है।

सबकी आत्मा समान है। इसीलिए, जिस प्रकार हमें दुःख होता है,

उसी प्रकार सबको दुःख होता है। जिस प्रकार हम सुख की कामना करते हैं, उसी प्रकार सब प्राणी सुख की आकांक्षा रखते हैं। इसलिए, सबकी एक समान रक्षा करनी चाहिए। इसमें ऐसा भेद नहीं करना चाहिए कि, जो हम बाधा पहुँचाये उसे मारने में पाप नहीं समझा जावे—इस प्रकार का वचन भी हिंसक-वचन है। यह सर्वज्ञ परमात्मा का आदेश है। उसकी निष्पक्ष दृष्टि यह है कि, यदि कोई भी जीव आत्मा हमारा बुरा करे, हमें दुःख दे तब भी उसकी रक्षा करो। फिर चाहे वह पशु हो या मनुष्य हो।

जैन धर्म की कितनी विशालता! कैसी उच्चता! जिनेश्वर देवों की कैसी असीम लोक-कल्याण विषयक भावना—सूक्ष्मातिसूक्ष्म प्राणियों के लिए भी रक्षा का उपदेश—बुरा करने तथा बुरा चाहनेवाले की भी रक्षा, तथा क्षमा दया यही एक भावना उसमें समायी हुई है। प्राणी चाहे जिस देश का हो, चाहे जिस योनि का हो, चाहे कहीं रहता हो, गुणविहीन हो, पर सबकी अपराधियों में भी निकृष्ट अपराधी प्राणी की भी रक्षा करो, केवल यही एक उपदेश सर्वज्ञ परमात्मा जिनेश्वर देव का रहा है और है।

हमारे पाँव में एक काँटा चुभता है, तो हम हाय तोबा मचा देते हैं। चिल्लाते हैं तो फिर दूसरे प्राणियों पर अत्याचार क्यों किया जाये! क्या उन्हें दुःख नहीं होता! जिस प्रकार हमें दुःख होता है, उसी तरह सबको दुःख होता है। सबसे अधिक बहुमूल्यवान प्राण-धन है। करोड़ों रुपये खर्च करने पर भी गया हुआ जीवन नहीं मिल सकता।

मनुष्य दूसरे प्राणियों की अपेक्षा अधिक समझदार और समर्थ है। इसीलिए, उसका यह प्रथम कर्तव्य है कि, वह निर्बल की रक्षा करे। अपने भौतिक सुख के लिए दूसरे प्राणियों को सुख से वंचित करना मानवता नहीं पशुत्व है।

जो प्राणी बेचारे गूँगे हैं, वाणी द्वारा अपने सुख-दुःख को [illegible] कर सकते ऐसे निर्बल प्राणियों का अपने स्वार्थ या जिह्वा [illegible] संहार करना भयंकर अन्याय है। इसमें मानवता नहीं, [illegible] है।

इस प्रकार जिनेश्वर देवों ने दया का श्रेष्ठ से श्रेष्ठतम स्वरूप बताया है।

झूठ का त्याग करो ! मित, प्रिय और सत्य बोलो !! झूठ बोलने से मुँह अपवित्र होता है !!! मनुष्य अपना विश्वास खो देता है। झूठ भी हिंसा की तरह एक महापाप है। चोरी का त्याग करो किसी को धोखा मत दो, जेबें कतरना, ताले तोड़ना या किसी का धन माल हजम कर जाना ये सब महान् पाप हैं।

मिथ्या दस्तावेज, झूठी गवाही, पाप का उपदेश इन सबका त्याग करो। ब्रह्मचर्य का पालन करो, ब्रह्मचर्य आत्मज्ञान पैदा करने का अमोघ साधन है। देव तथा दानव भी शुद्ध ब्रह्मचारी के दास बनते हैं। उसके वचन की कीमत होती है। संसार में परम पुरुष और उत्तम पुरुष के रूप में उसकी गणना होती है।

अधिक संग्रह मत करो, आवश्यकताओं को कम करो, किसी भी व पर ममता भाव, मूर्च्छा, मत रखो—'संतोषी नर सदा सुखी'। इसलि जितनी आवश्यकताएँ कम होंगी उतनी ही सुख-शांति होगी। आधुनि युग में सम्पत्ति कौन-कौन से विषम ताप कर रही है, उसमें हम अनभि नहीं हैं। इसीलिए जैन धर्म का परिग्रह परिमाण व्रत केवल एक देश ही नहीं पर सार्वदेशिक उपकारक है।

रात्रि भोजन का त्याग करो। रात्रि भोजन से अनेक जीवों की हिं होती है। बुद्धि खराब होती है और दूसरे जन्म में दुर्गति में जाना पड़ है। चलना पड़े तो नीचे भूमि की ओर भली भाँति देख भालकर चलें पानी इत्यादि छानकर पिओ। क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष आ ये सब—भयंकर शत्रु हैं। इन्हें कम करो।

न तो किसीकी निंदा करो और न किसी की ईर्ष्या। आत्मा पहचानो। व्यर्थ के लड़ाई-झगड़े में मत पड़ो। परस्पर प्रेमभाव रख

जैन साधु

जैन-साधु बालपन अथवा हजारों-लाखों की दौलत को, मकान, घर, बगीचा आदि विपुल सामग्री तथा माता पिता, भाई बहन, पुत्र परिवार आदि स्वजन सम्बन्धियों को छोड़कर उनका मोह दूर कर क्षणभंगुर सुख भोग विलासों में जीवन बिताने से मुँह मोड़कर मुक्तिमार्ग की साधना के लिए जिनेश्वरदेव द्वारा प्ररूपित संयम के पवित्र मार्ग पर प्रयाण करने के लिए तैयार होते हैं और त्यागी गुरुओं के पास दीक्षा (संन्यास) लेते हैं। दीक्षा लेते समय उन्हें पाँच महान् प्रतिज्ञाएँ (महाव्रत) लेनी पड़ती हैं।

१ आजीवन छोटे या बड़े चर अचर किसी भी जीव की हिंसा मन, वचन या काया से नहीं करना, न कराना और न करानेवाले का अनुमोदन करना। इस प्रकार समस्त जीवों की सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप में रक्षा करना उनका प्रथम व्रत है। वस्तुतः, सब जीवों की रक्षा के लिए ही ये संसार का त्याग कर साधु संयमी बनते हैं। गृहस्थाश्रम में ऐसी सूक्ष्म दया का पालन नहीं किया जा सकता। जैन-साधु चाहे जैसा अवसर आये अग्नि का स्पर्श तक नहीं करते। कड़कड़ाती ठण्ड में भी अग्नि की धूनी नहीं लगाते, घोर गर्मी में पंखे का उपयोग भी नहीं करते। रात्रि के समय दीपक या बिजली की बत्ती का भी उपयोग नहीं करते।

२ सत्य के लिए त्रिविध त्रिविध झूठ का त्याग।

३ चोरी का सर्वथा त्याग। छोटी-से-छोटी वस्तु का भी मन वचन काया से उसके मालिक को पूछे बिना न उपयोग करते हैं, न कराते हैं और न करनेवाले का अनुमोदन करते हैं।

४ ब्रह्मचर्य (अब्रह्म का त्याग) जैन साधु दीक्षा अंगीकार करते हैं— उस समय से यावज्जीव—जीवनपर्यन्त ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं। स्त्री का

स्पर्श तक नहीं करते, यदि भूल से कदाचित अकस्मात् स्त्री के वस्त्र का भी स्पर्श हो जाय, तो उन्हें प्रायश्चित लेना पड़ता है। जिस मकान में स्त्री रहती हो, वहाँ वे निवास भी नहीं करते। रात्रि के समय उनके निवास स्थान में स्त्रियों के लिए जाने आने का खास प्रतिबन्ध होता है। वे नैष्ठिक ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं।

जैन साधु गाड़ी, घोड़ा, साइकिल, मोटर, विमान या किसी भी वाहन का उपयोग नहीं करते। सम्पूर्ण भारत में वे पाद विहार कर के जाते हैं। अनेक कष्टों का सामना कर गाँव गाँव और नगर-नगर में समस्त प्रजा को बिना किसी भेद भाव के आत्महित का उपदेश देते हैं। किसी भी प्रकार के स्वार्थ के बिना जनता का कल्याण का सच्चा रास्ता बतलाते हैं।

छाता जूता-खड़ाऊँ इत्यादि का उपयोग वे नहीं करते तथा उन्हें किसी वस्तु का व्यसन भी नहीं होता। सदैव ज्ञान ध्यान, आत्मचिन्तन और पठन पाठन में ही काल व्यतीत करते हैं।

वे भोजन भी स्वयं नहीं पकाते। मधुकरी वृत्ति से प्रत्येक घर भिक्षा गोचरी लेने जाते हैं। निर्दोष आहार पानी ग्रहण करते हैं। गृहस्थ लोग अपने श्रेय के लिए उन्हें सादर समर्पण करते हैं। परन्तु, ये त्यागी साधु उन्हें जितनी आवश्यकता हो उतनी ही वस्तु ग्रहण करते हैं। रात्रि को न अपने पास कोइ भी खाने-पीने की वस्तु नहीं रखते। ये अपने सिर के बाल भी प्रसन्नतापूर्वक हाथ से खिंच डालते हैं। शरीर के ऊपर के ममत्व को दूर करने के लिए वे ऐसे कठिन परिषह भी आनन्द से सहन करते हैं।

सूर्योदय के बाद दो घड़ी (याने ४८ मिनिट) के बाद ही यदि कोइ वस्तु मुँह में डालनी हो तो डालते हैं। और, सूर्यास्त के बाद आहार पानी का बिल्कुल उपयोग नहीं करते। चाहे जैसी गर्मी हो व रात्रि के समय प्यास लगने पर भी पानी नहीं पीते। ऐसी कठिन प्रतिज्ञाओं का पालन जैन साधु सर्वदा करते हैं।

जैन-साधुओं का जीवन बहुत ऊँचा होता है। जगत के कल्याण के लिए ही उनका सारा जीवन होता है। जैन-साधु सब प्राणियों की रक्षा के लिए ही ऐसी उत्कट प्रतिज्ञाएँ ग्रहण करते हैं। ऐसे महान् त्यागी सन्त साधु आज भी सैकड़ों की संख्या में इस भूमण्डल पर पैदल प्रवास कर रहे हैं और संसार पर महान् उपकार कर रहे हैं। आज जगत में जो कुछ शान्ति सुख और आबादी दृष्टिगोचर होती है, उसका सारा श्रेय उन त्यागी साधुओं और तपस्वी पुण्यात्माओं को है।



वृक्ष, पत्ते, फूल, फल इत्यादि कैसे सम्भव हो सकते हैं। वृक्ष रूपी कार्य का किसी कारण के बिना सम्भव नहीं हो सकता, इसलिए हम मानते हैं कि उसका कारण मूल होना आवश्यक है।

इस प्रकार हम कार्य से उसके कारण को समझ सकते हैं। इसी तरह आत्मा का कार्य भी जीवित मनुष्य में दृष्टिगोचर होता है। जीवित मनुष्य जिस प्रकार हिलता डुलता है, क्रिया करता है, चेष्टा करता है, विचार करता है, भूत भविष्य सम्बन्धी ऊहा पोह करता है, भूत भविष्य सम्बन्धी विचार और कल्पनाएँ करता है ये सब क्रियाएँ मृतक व्यक्ति में नहीं होतीं। एक मिनट पहले जिस जीवित मनुष्य में हिलना चलना आदि सब क्रियाएँ दृष्टिगोचर होती थीं, मरने के बाद तुरन्त एक क्षण में मृतक व्यक्ति निष्क्रिय हो जाता है। इस प्रत्यक्ष उदाहरण द्वारा हम समझ सकते हैं कि, जीवित मनुष्य में कार्य आत्मा का है और मृतक में से आत्मा चली गयी, इसलिए तब उसे कुछ भी प्रतीत नहीं होता। इस प्रकार आत्मा का कार्य हमें प्रत्यक्ष दिखाई देता है। इस दृष्टान्त द्वारा हम आत्मा को अच्छी तरह समझ सकते हैं।

शरीर आत्मा का घर है। घर में रहनेवाला घर से भिन्न होता है। घर या प्रासाद गिर जाये अथवा किराये के मकान की अवधि पूरी होने पर उस मकान में रहनेवाला घर छोड़ या उसे खाली करके दूसरी जगह रहने लगता है, उसी प्रकार इस शरीर में आत्मा के रहने की अवधि समाप्त होने पर आत्मा कर्म के अनुसार दूसरे स्थान पर बाँधे हुए आयुष्य के अनुसार—जाता है। दूसरे जन्म में जाने पर वहाँ दूसरा शरीर धारण करता है। वहाँ पर भी फिर अवधि पूरी होने पर तीसरे जन्म में आत्मा जाती है। वहाँ तीसरा शरीर धारण करती है। इस प्रकार अनादि काल से कर्मानुसार जन्म मृत्यु की परम्परा चलती रहती है।

जिस प्रकार तलवार से म्यान भिन्न होती है, उसी तरह देह से भी आत्मा भिन्न है। जिस प्रकार दूध में घी विद्यमान होने पर भी घी दिखाई

लकड़ी में अग्नि और दूध में घी दिखाई न देने पर भी उनके अस्तित्व को स्वीकार करना पड़ता है, उसी प्रकार शरीर में आत्मा का अस्तित्व सिद्ध है। जब आत्मा अपने स्वरूप को पहचान लेती है तब वह धर्माचरण में लीन होती है और जब कर्मों का भेदन कर डालती है, तब जन्म-मृत्युरहित बनती है। यह अमर आत्मा मोक्ष के स्थान में जाकर और सतत अखंड सुखोपभोग करनेवाली अनन्त सुखी बनती है।

इस प्रकार आत्मा अनेक प्रमाणों से भी सिद्ध है। आत्मा स्वयं वेद्य होने से भी सिद्ध वस्तु है, इस लोक को छोड़कर परलोक में जानेवाली है। इस शरीर में भी वह परलोक से आयी है और आयुष्य कर्म समाप्त होने के बाद यह शरीर छोड़कर दूसरे शरीर में जानेवाली है, यह बात भी सुनिश्चित है। आत्मा अमर, अखंड और अविनाशी है, फिर भी कर्म के अधीन होकर उसे जन्म मरण धारण करने पड़ते हैं, संसार में परिभ्रमण करना पड़ता है, दुःखी होना पड़ता है, अंत में कर्मों का नाश होने पर वह अपने मूल रूप में आकर पूर्ण बनती है। परमात्मा-स्वरूप बनती है। वैसी पूर्ण बनी हुई, आत्मा को परमात्मा कहते हैं।



कर्म

यह जगत कितनी विचित्रताओं से परिपूर्ण दिखाई देता है। इन सब विचित्रताओं का मूल कारण 'कर्म' है। यदि कर्म जैसी वस्तु न होती, तो यह प्रत्यक्ष दिखाई देनेवाली विचित्रता भी न होती। एक राजा, एक गरीब, एक सुखी, एक दुःखी, एक रोगी, एक निरोगी, एक काला, एक गोरा, एक स्थूल, एक पतला, एक सेठ, एक नौकर, एक मूर्ख, एक बुद्धिशाली, नीचा, ऊँचा, लूला, लंगड़ा, अंधा, बहरा, सुंदर और कुरूप इन सब विचित्रताओं के पीछे कुछ कारण है। उन विचित्रताओं के पीछे 'कर्म' नामक एक महासत्ता काम कर रही है और उसी के फलस्वरूप जगत इतनी अधिक विचित्रताओं से परिपूर्ण दिखाई देता है।

कर्म के अणु अखिल विश्व में निविड़तम रूप से भरे हुए हैं। यद्यपि वे अरूपी हैं फिर भी हम उनके कार्य से उन्हें जान सकते हैं।

एक समय लोग ऐसा कहते थे कि, हिटलर किसी भी समय पराजित नहीं हो सकता। उसकी विजय के डंके चारों ओर बज रहे थे, फिर भी आज उसका नामो निशान तक नहीं रहा और जिसका 'ब्राडकास्ट' सुनने के लिए एक समय हजारों-लाखों आदमी दौड़ पड़ते थे, आज उसकी वाणी सुनने के लिए कोई तैयार नहीं। बड़े-बड़े राजाओं के सिंहासन हिल उठे, अभिमान में चूर न जाने कितने रुस्तम आनन् फानन में जमींदोज हो गये। इन सबका मुख्य कारण कौन? कर्म।

एक ही माता के उदर में से एक साथ पैदा हुए युगल में भी एक मूर्ख और एक बुद्धिशाली, एक धनिक और एक गरीब, एक काला और एक गोरा पैदा होता है इसका क्या कारण? गर्भ में तो किसी न किसी प्रकार के ऐसे कर्म नहीं किये थे, फिर भी इतना अधिक विचित्रता क्यों?

इससे भी हम समझ सकते हैं कि, एक साथ पैदा होने पर भी, पूर्व भव के कर्म के परिणाम स्वरूप इस प्रकार की अद्भुत् विचित्रता दिखायी देती है।

जब आत्मा किसी अन्य स्थान से आयी है, तब यह भी निश्चित है कि, अपने कर्मानुसार वह कहीं अन्यत्र जानेवाली है।

आत्मा अमर है, अखण्ड है, अविनाशी है। जिस प्रकार मनुष्य पुराने वस्त्र जीर्ण होने पर नवीन वस्त्र पहनता है और पुराने वस्त्रों को उतारकर फेंक देता है, उसी प्रकार यह आत्मा एक शरीर छोड़कर दूसरा शरीर धारण करती है। शरीर नष्ट जाने पर भी यह आत्मा वह की वही रहती है। यह आत्मा कर्मानुसार विविध गतियों में परिभ्रमण करती है और अनेक प्रकार की यातनाओं पीड़ाओं की भोग बनती है। पर, इतना होते हुए भी मनुष्य देवों के लिए भी दुर्लभ मनुष्य जन्म को प्राप्त करके भी अनेक प्रकार के कुकर्म करता है। हिंसा, झूठ, चोरी, दुराचार, अनीति, बुराई, ईर्ष्या और निन्दा, विकथा द्वारा अशुभ कर्मों को संचित करता है। ये कर्म आत्मा के साथ क्षीर नीरकी तरह एकाकार हो जाते हैं। परिणामस्वरूप आत्मा को अनेक जन्म-जन्मान्तरों में असह्य दुःख सहन करने पड़ते हैं।

मनुष्य वर्तमान काल का विचार करता है, परन्तु भविष्य का विचार नहीं करता। संकुचित दृष्टि व्यक्ति को यह खबर नहीं कि, केवल पाँच पचास वर्ष की छोटी-सी जिंदगी के लिए, मान-सम्मान के लिए और बड़ा कहलाने के लिए, वह धर्म कर्म के साथ ही साथ आत्मा तक को भूल जाता है। परिणाम स्वरूप उसी आत्मा को उसके कर्मों के कडुए फल चखने पड़ते हैं। भविष्यकाल अनन्त है। एक छोटे से जीवन में क्षणिक तुच्छ सुखों के लिए प्राणी असंख्यकालीन दुःखों की परम्परा अपने ऊपर लाद लेता है। कितनी अधिक मूर्खता?

मनुष्य अपनी बुद्धि के घमण्ड में मरा जाता है। गर्वित होकर जो

मन में आता, वह करता रहता है। इस जीवन में तो एक एक मिनट का वह विचार करता है, परन्तु एक मिनट के लिए भी वह नहीं विचारता कि इस जीवन के 'ॐ पुट् स्वाहा' होने के बाद क्या होगा ? शरीर में से आत्मा के निकल जाने के बाद क्या दशा होगी ? कहाँ जायेगा ? इसका लेशमात्र भी विचार उसके मन में नहीं उठता। राजमहल, ऐश्वर्य और हुकूमत ये सब केवल इस जीवन तक सीमित हैं। नहीं खाने योग्य अभक्ष्य पदार्थों जैसे कि मद्य माँस आदि वस्तुओं से उसने जिस शरीर को पाल पोस कर हट्टा-कट्टा बनाया है, वह शरीर अन्त में एक दिन राख होनेवाली है, इस बात को वह भूल जाता है।

अज्ञानी व्यक्ति भोग-विलास में मस्त होकर पशु की तरह जीवन व्यतीत करता है और न केवल इस अमूल्य मानव देह को निकम्मा बना डालता है वरन् कोटि कोटि वर्षों के लिए आत्मा को कष्टों में डालता है।

जिस स्थान से रत्न इकट्ठे करने चाहिए, वहाँ से वह कंकड़ इकट्ठे करता है। कितनी अधिक अज्ञानता !

मनुष्य को अपने हो कपड़े थोड़े से भी मैले या गन्दे हों तो अच्छे नहीं लगते, कूड़-करकट से भरा हुआ घर भी उसे इष्ट नहीं लगता। तो फिर उसे आत्मा की मलिनता पसन्द पड़ना अज्ञानता नहीं तो और क्या है।

मनुष्य मकान को बार बार झाड़ू से झाड़कर साफ रखता है। अपने शरीर पर रहे हुए मैल को दूर करने के लिए गरम पानी और साबुन के द्वारा खूब रगड़ रगड़कर स्नान करता है और शरीर को स्वच्छ रखता है। कपड़ों को प्रतिदिन धोता और बदलता है। पर, वह इस ओर किंचित् ध्यान नहीं देता कि उससे परम निकटतम आत्मा मलिन हो रहा है, और उसे शुद्ध करने के लिए वह किंचित् प्रयास नहीं करता। यही सबसे बड़ी अज्ञानता है। शरीर, धन, माल, मिल्कत और स्वजन परिवार आदि सब क्षणिक और विनश्वर हैं। उनके मोह में मनुष्य जीवन बर्बाद करता है और अमर आत्मा को भूल जाता है।

तथ्य तो यह है कि, आत्मा है तो सब है। जब तक आत्मा रहती है तब तक सब उसका इज्जत करते हैं, सम्मान करते हैं और सत्कार करते हैं। मुरदे की क्या कीमत है ? जो आजीवन स्नेह सत्कार करते हैं वे ही मृत्यु के बाद, हमारे शरीर को अपने ही हाथों से जलाकर भस्म कर डालते हैं।

आत्मा की उपस्थिति में ही बाग बगीचे, बंगले, धन माल आदि सब वस्तुएँ काम आती हैं। पर, जब आत्मा शरीर से निकल जाती है, परलोक में जाती है, तब बड़े बड़े राजमहल, ऐश्वर्य, धन की राशि, स्वजन स्नेही और प्यारे प्रियतम सब यहाँ पर ही रह जाते हैं और अकेली आत्मा सबसे मुँह मोड़कर निकलती है और अपने पूर्वसंचित कर्म भोगती है। उस समय कोई स्वजन उसका सहायक नहीं हो सकता।

आप पूछेंगे कर्म जड़ है, फिर वह चेतन आत्मा को कैसे प्रभावित करता है। इसका उत्तर है कि, जैसे मद्य जड़ द्रव्य होने पर भी आत्मा को बेहोश बनाता है, उसी प्रकार कर्म जड़ होने पर भी आत्मा पर अपना प्रभाव डालकर फल देता है। किये हुए कर्मों से यदि छुटकारा प्राप्त करना हो, शाश्वत शांति प्राप्त करनी हो, पूर्ण सुखी बनना हो और सदैव के लिए अखंड आनन्द में मग्न होना हो, तो केवली प्ररूपित मार्ग पर चलना चाहिए। सच्चा ज्ञान सीखना चाहिए सच्ची मान्यता पर अटल होना चाहिए और सच्ची क्रिया करनी चाहिए। सब जीवों के प्रति मैत्री भावना का विकास कर अहिंसक वृत्ति रख कर सदाचार, न्याय, नीति और सत्य का पालन करना चाहिए, तथा तपश्चर्यायें करते रहना चाहिए। इन्द्रियों के गुलाम न बनकर उनका दमन करते रहना चाहिए। आत्मा को पहचान कर आत्म विकास के लिए सतत प्रयत्नशील रहना चाहिए। इससे आत्मा क्रमशः कर्मों से छूटता जाता है और अंत में कर्म रहित होकर मुक्ति धाम (मोक्ष में) पहुँच जाता है और वहाँ पर शाश्वत सुख का भोक्ता बनता है।

जिस प्रकार अनादि काल से खान में रहा हुआ सोना मिट्टी से मिला हुआ होता है, उसी प्रकार आत्मा भी अनादि काल से कर्म द्वारा लिप्त है।

जिस प्रकार सोना खान में से बाहर निकालने के बाद विभिन्न प्रयोगों द्वारा शुद्ध और निर्मल बनता है उसी प्रकार आत्मा भी तप, संयम और दया, दान आदि साधनों द्वारा कर्म से विमुक्त होकर पूर्ण शुद्ध होता है। जो आत्मा कर्म से विमुक्त (रहित) बनती है, वह आत्मा परमात्मा स्वरूप को प्राप्त करती है।

जीवात्माओं की संख्या अनंतानंत है। सबकी आत्मा भिन्न भिन्न हैं। यदि सबकी आत्मा एक ही होती, तो एक के सुख से सब सुखी और एक के दुःख से सब दुःखी नजर पड़ते, परन्तु इससे विपरीत ही देखने में आता है। जो व्यक्ति शक्कर खाता है, उसे ही शक्कर मीठी लगती है अन्य को उसके स्वाद का भास नहीं होता। एक व्यक्ति की मृत्यु होने पर उसके साथ सब नहीं मर जाते। इससे स्पष्ट है कि, स्वभाव रूप से सब आत्माएँ समान होने पर भी व्यक्तिगत रूप से सब भिन्न-भिन्न हैं।

जो जो आत्माएँ कर्म से विमुक्त बनती है, वे सभी परमात्मा बनती हैं।

शुद्ध बनी हुई आत्मा को पुनः कर्मों का लेप नहीं होता तथा उसे फिर से अवतार या जन्म लेना नहीं पड़ता। बीज के जल जाने के बाद जिस प्रकार अंकुर पैदा नहीं होते, उसी प्रकार कर्म रूपी बीज के सर्वथा भस्मीभूत हो जाने पर जन्म मरण रूपी अंकुर पैदा नहीं होता। तात्पर्य यह है कि, उसे पुनः जन्म या अवतार लेना नहीं पड़ता, वह आत्मा अपने मूल रूप को प्राप्त कर के अजर अमर बन जाता है। वे परमात्मा बनी हुई आत्माएँ इस शरीर को छोड़कर एक समय—सूक्ष्मातिसूक्ष्म काल—में सात रज्जु ऊँचे उस सिद्धशिला पर पहुँच जाती हैं, जहाँ पर कि अनंत सिद्धात्माएँ निवास कर रही हैं। सिद्ध शिला पर पहुँची आत्माओं का न तो जन्म होता है और न मरण, न उन्हें कभी रोग होता है और न शोक न चिंता

का भय होता है और न किसी प्रकार की लेश मात्र भी उपाधि होती है। सिद्धशिला स्थित समस्त आत्माएँ सदैव के लिए अनंत आनद सागर में निमग्न रहती हैं।

परमात्मा शब्द ही इस बात का सूचक है कि, जो आत्मा शुद्ध और निर्मल बनती है, वह परमात्मा कहलाती है। इसीलिए, एक ही परमात्मा है, यह बात भी भ्रमपूर्ण है। यदि हमारी आत्मा का परमात्मा—पूर्ण और पूर्ण ज्ञानी होना—असम्भव होता तो साधुओं के लिए घर छोड़कर उत्कट तपश्चर्या करने की आवश्यकता नहीं रहती। साधु सत केवल मुक्ति के ध्येय से ही प्रत्येक उत्कृष्ट क्रिया तथा उत्कट तपश्चर्याएँ करते रहे हैं और करते हैं। किसी प्रयोजन के बिना कोई मूर्ख मनुष्य भी किसी काम में प्रवृत्त नहीं होता। इसलिए, बुद्धिमान और तपस्वी सन्त पुरुष मोक्ष प्राप्ति के लिए जो धार्मिक अनुष्ठान करते हैं, वे यथार्थ है।

परमश्चासौ आत्माच परमात्मा—यहाँ 'परम' शब्द 'आत्मा' का विशेषण है। जो आत्माएँ त्यागी संत होती हैं अर्थात् जिनके आचार विचार उत्तम होते हैं, वे ही आत्माएँ अथवा परमात्मा महात्मा रूप से पहचानी जाती हैं।

और, जिनका आचरण निकृष्ट होता है, जो नगण्य काम करते हैं तथा जो निर्दयी और पापी हैं, उनकी गिनती अधम आत्माओं में की जाती है। परमात्मा—अर्थात् वीतराग, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी और सर्वशक्तिमान, पूर्ण सुखी, अखंड आनन्द के भोक्ता, अनन्तगुणी और सर्वोपरि पूर्ण शुद्ध आत्मा।

ईश्वर की उपासना

जैन समाज पूर्ण आस्तिक समाज है। जैन लोग जिस प्रकार ईश्वर की उपासना, सेवा, भक्ति करते हैं, वैसी उपासना शायद ही कोई करता होगा। वे परमात्मा की भक्ति में अपना तन, मन और धन सभी समर्पित कर देते हैं।

यह बात तो जैन मन्दिरों को देखने मात्र से सहज ही स्पष्ट हो जा सकती है।

परमात्मा की सेवा से आत्मा परमात्मा बनती है। भ्रमर का ध्यान करते रहने से जैसे कीट भ्रमर बन जाता है, वैसे ही परमात्मा के ध्यान से आत्मा परमात्मा बनता है। आत्मा स्फटिक जैसी निर्मल है। जिस प्रकार स्फटिक रत्न के पास जिस रंग की वस्तु रखी जाती है, उसी रंग का प्रतिबिम्ब उसमें पड़ता है—वह वैसे रंग का मालूम होता है—उसी प्रकार आत्मा को जैसे जैसे संयोग प्राप्त होते हैं, वैसी वह बन जाती है। राग द्वेष या मोह के निमित्त प्राप्त होने पर आत्मा रागी, द्वेषी अथवा मोही बनती है तथा अच्छे संयोग प्राप्त होने पर उसमें अच्छी भावनाएँ उत्पन्न होती हैं। इसलिए, संसारी आत्माओं के लिए अच्छे निमित्तों और अच्छे आलम्बनों की सर्वप्रथम और शीघ्रातिशीघ्र आवश्यकता है। और, इसके लिए सर्वोच्च और सुन्दरतम निमित्त परमात्मा की प्रशमरस से परिपूर्ण शान्तमुद्रा और वीतरागता का प्रत्यक्ष अनुभव करानेवाली चित्ताकर्षक मनोहर मूर्तियाँ हैं। इन वीतराग परमात्मा की मूर्ति के दर्शन, पूजन और सेवा भक्ति से आत्मा वीतराग दशा का अनुभव करती है।

परमात्मा को किसी वस्तु की अपेक्षा नहीं होती परन्तु संसार की मोह माया से मुक्त होने के लिए भक्तजन तन, मन और धन उनके चरण कमलों

में समर्पित कर देते हैं, और यह भावना भाते रहते हैं कि, "हे प्रभु! इन सब वस्तुओं के मोह में आत्मा जन्म जन्मांतरों से पागल बनी हुई है, फिर भी किसी जन्म में उसे तृप्ति नहीं हुई। अब इन तुच्छ जड़ पदार्थों की मूर्छा, मोह, माया छोड़कर मैं आप जैसा वीतराग कब बनूँगा ?"

वीतराग का ध्यान करने से आत्मा वीतराग बनती है। क्योंकि, प्रत्येक आत्मा में वीतरागता का गुण कर्म से दबा पड़ा हुआ है। वास्तव में आत्मा का स्वरूप और परमात्मा का स्वरूप एक ही है इसीलिए हम 'सोऽहं सोऽहं' का जाप जपते हैं।

"हे प्रभु! तेरे स्वरूप और मेरे स्वरूप में लेशमात्र भी अन्तर नहीं है। मैं भी परमात्मा स्वरूप हूँ, परन्तु आप कर्म रहित होकर परमात्मपद को प्राप्त हुए जब कि मैं कर्मवश होकर इस संसार में परिभ्रमण कर रहा हूँ।"

इस प्रकार की विविध भावनापूर्वक परमात्मा की भक्ति करने से आत्मा सरलता से कल्याण को साध सकती है। जिस प्रकार जिनेश्वर देव की मूर्ति आत्मा के उत्कर्ष के लिए उत्तम आलम्बन है, उसी प्रकार धार्मिक पुस्तकें और त्यागी गुरुदेव आदि भी प्रशस्त अर्थात् श्रेष्ठ आलम्बन रूप हैं। इसलिए उनके सहवास में रहनेवाली आत्मा का परिवर्तन होता है। जो आत्माएँ इस प्रकार आचरण करती हैं, वह सन्मार्ग की ओर प्रयाण करती हैं, उन्हीं का विकास होता है और वे ही कर्मों का ध्वंस करने में समर्थ होती हैं।

***

ईश्वर का कर्तृत्व

अनेक व्यक्तियों की यह मान्यता है कि, 'इस जगत का कर्ता ईश्वर है, सृष्टि का सर्जनहार ईश्वर है क्योंकि सामान्य व्यक्ति द्वारा इस जगत की रचना होना अशक्य है।' परन्तु, उनकी यह मान्यता भ्रमपूर्ण है। ईश्वर को जगत्कर्ता मानने में अनेक दोष हैं।

ईश्वर ने किसलिए जगत की रचना की? जब जगत नहीं था, तब ईश्वर कहाँ था? क्या ईश्वर को अकेला रहना अच्छा नहीं लगता था। इसलिए, उसने खेल करने के लिए, जगत की रचना की! यदि ऐसा कहा जाये, तो ईश्वर बालक जैसा सिद्ध होगा।

यदि कहा जाये कि, इस जगत की रचना ईश्वर ने की तब यह प्रश्न होगा कि, ईश्वर की रचना किसने की? और, उसके रचनेवाले को फिर किसने बनाया? इसकी परम्परा चलेगी तो उसका कहाँ जाकर अंत होगा? थोड़ी देर के लिए यदि ऐसा मान लें कि, ईश्वर ने जगत की रचना की तो फिर एक को सुखी, एक को दुःखी, एक को राजा, एक को गरीब, किसी को लूला, किसी को लंगड़ा, किसी को अंधा, किसी को अपंग तथा किसी को हृष्ट पुष्ट इस प्रकार वैचित्र्य पूर्ण विश्व बनाने का क्या कारण है? मान्य ईश्वर की दृष्टि में तो सब समान हैं, तब फिर एक को सुखी करना और दूसरे को दुःखी करना क्या ऐसा पक्षपात ईश्वर में हो सकता है?

एक को मारना और एक को जीवित रखना—ऐसा करने में ईश्वर के किस प्रयोजन की सिद्धि होती है? इसके उत्तर में आप ऐसा कहें कि, यह सारी विचित्रता कर्म के कारण है, तो फिर नवीन पैदा हुए जीवों में कर्म कहाँ से आये! इसलिए, मानना होगा कि, दुनिया अनादिकालीन है,

जीव भी अनादिकाल से है और कर्म भी प्रवाह से अनादिकालीन हैं। जीव नये कर्म बाँधते हैं, पुराने भोगते हैं। इस प्रकार कर्मानुसार आत्मा की भिन्न भिन्न दशा रहती है। इसलिए ईश्वर का कर्तृत्ववाद सर्वथा कपोल कल्पित है। एक घर में दस आदमी रहते हैं, पर उसके पालन करनेवाले को कितनी उपाधि उठानी पड़ती है तब सारे संसार की उपाधि में पड़नेवाले ईश्वर को कितनी चिंता रखनी पड़ती होगी। फिर तो ईश्वर को हमारी अपेक्षा अधिक उपाधिवाला गिना जाना चाहिए। और, ऐसे उपाधि युक्त ईश्वर को सुखी कैसे कहा जा सकता है?

ईश्वर यदि समर्थ है, तो उसने सबको एक समान क्यों नहीं बनाया?

कोई ऐसा कहता है कि, फल तो कर्माधीन होते हैं, विचित्रता भी कर्मानुसार होती है तो फिर उससे पूछा जाये कि, तब ईश्वर ने विशेष क्या किया? जब प्रत्येक आत्मा को कर्माधीन और कर्मानुसार फल मिलते हैं तो फिर ईश्वर को बीच में डालने की क्या आवश्यकता महसूस हुई।

इसलिए, ऐसी कल्पनाएँ करने की आवश्यकता नहीं। आत्मा और कर्मों के द्वारा ही सारी सृष्टि है। आत्मा और कर्म अनादि अनन्त हैं पर कर्म रहित आत्मा के लिए सृष्टि का अंत आता है। जो आत्मा धर्माचरण द्वारा कर्मों का नाश कर डालती है, उस आत्मा की सृष्टि का अंत हो जाता है और वह परमात्मा बनती है।

जैन

साधु धर्म का पालन करना सामान्य व्यक्ति
वह मार्ग अत्यंत दुष्कर है। विरक्त आत्माएँ ह
की आराधना कर सकती हैं। जो आत्माएँ सा
असमर्थ हों, उनके लिए दूसरा मार्ग श्राव
बताया गया है।

सम्यक्त्व

गृहस्थ के व्रत

जैन-गृहस्थ द्वारा पालन करने योग्य बारह व्रत हैं। उनमें से पहले पाँच को अणुव्रत, ६ से ग्यारह ८ तक गुणव्रत और अंतिम चार को शिक्षाव्रत कहते हैं।

(१) स्थूल प्राणातिपातविरमण व्रत

गृहस्थ स्थावर जीवों की हिंसा का संपूर्ण त्याग कर नहीं सकता। उसके लिए वहाँ तक पहुँचना अशक्य है। इसलिए, गृहस्थ संपूर्ण रूप से दया का पालन नहीं कर सकता, फिर भी उसे निरपराधी हिलने डुलनेवाले किसी भी त्रस प्राणी को जानबूझकर मारने की बुद्धि से मारना नहीं चाहिए।

और, प्रत्येक काम को इस प्रकार उपयोगपूर्वक करना चाहिए कि, जिससे स्थावर जीवों की भी हिंसा न हो (स्थावर अर्थात् पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु और वनस्पति कायिक जीव)।

(२) स्थूल-मृषावाद विरमण व्रत

यदि गृहस्थ असत्य भाषण का सर्वथा त्याग नहीं कर सकता हो तो भी उसे ऐसे मिथ्या वचन का तो अवश्य ही त्याग करना चाहिए, जिससे कि दूसरों को आघात पहुँचता हो—जैसे कि झूठी साक्षी, झूठे दस्तावेज, झूठी सलाह या विश्वासघात अथवा ऐसे अन्य अनर्थकारी झूठ का सर्वथा त्याग होना ही चाहिए।

(३) स्थूल-अदत्तादानविरमण-व्रत

इसी प्रकार गृहस्थ को चोरी का बिल्कुल त्याग करना चाहिए। फिर भी यदि वह कारण विशेष से चोरी का संपूर्ण त्याग न कर सकता हो, तो भी उसे किसी की जेब कतरना, गाँठ काटना, किसी का धरोहर को पचा जाना, ताले तोड़ना, खोटे कपड़े या कम अधिक माप परिमाण रखना, घर में सेंध लगाना, लूट पाट, धान्य की चोरी और ठगी इत्यादि चोरी का तो अवश्य त्याग करना चाहिए।

(४) स्थूल-मैथुनविरमण व्रत

गृहस्थ यदि ब्रह्मचर्य का सर्वथा पालन न कर सकता हो तो भी उस परस्त्री का तो अवश्य त्याग करना चाहिए और अपनी स्त्री के साथ भी मर्यादित संयोग करना चाहिए अर्थात् महीने में कुछ दिन तो अवश्य ब्रह्मचर्य का पालन करना ही चाहिए।

(५) स्थूल परिग्रहपरिमाण-व्रत

इच्छाओं का निरोध करने के लिए प्रत्येक वस्तु का नियम रखना। धन, धान्य, मकान इत्यादि वस्तुओं का आवश्यकता से अधिक संग्रह नहीं करना। उनका परिमाण करना। यदि व्यापार आदि द्वारा धन की वृद्धि हो जावे तो उसे धार्मिक स्थानों में और दीन-दुखी की भलाई में लगा देना चाहिए।

(६) दिशापरिमाण व्रत

उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम इन चार दिशाओं उनकी मध्यवर्तिनी ईशान, नैऋत्य, आग्नेय, वायव्य चार विदिशाओं तथा ऊर्ध्व और अधो दिशाओं की ओर जाने-आने का नियम रखना।

(७) भोगोपभोगपरिमाण व्रत

भोग करने योग्य पदार्थों का नियम रखना जैसे कि आज इतनी वस्तुओं से अधिक का उपयोग न करना। उसके लिए चौदह प्रकार के नियम बताये गये हैं। पाप परिणामकारक व्यापार नहीं करना, उनमें भी ऐसे व्यापारों का तो मुख्य रूप से त्याग होना ही चाहिए, जिससे कि हिंसा परिमाण बढ़ जाता हो।

जीवन पर्यंत ऐसा नियम बना लेना चाहिए, जिससे खाने पीने, पहनने, ओढ़ने आदि शरीर के उपयोग में आनेवाली तमाम वस्तुओं का मर्यादा से अधिक उपयोग न हो।

(८) अनर्थदंड व्रत

दुर्ध्यान नहीं करना। खराब ध्यान से आत्मा मृत्यु के बाद दुर्गति में जाती है। किसी को भी पाप का उपदेश न देना, शस्त्रास्त्र का निर्माण नहीं करना। झूठी कथाओं की रचना न करना, देश कथा, स्त्री कथा, भोजन सम्बन्धी कथा और राज कथा का त्याग करना पाप का उपदेश न देना, सिनेमा, सर्कस इत्यादि का त्याग करना। व्यर्थ के पापकर्म न करना। एवं हिंसक प्राणी को नहीं पालना।

(९) सामायिक व्रत

चित्त को समाधि में रखने और समता का सच्चा आस्वाद लेने के लिए अमुक समय पर्यंत अर्थात् विधिपूर्वक ४८ मिनट तक समभाव में रहने को सामायिक व्रत कहते हैं। परमात्मा के ध्यान में लीन होना, आत्मविकास में सहायक होनेवाली पुस्तकों का पठन पाठन करना, व्यापार तथा आरंभ समारंभ का सर्वथा त्याग कर ४८ मिनट तक एकाग्रचित्त से धर्मध्यान करना।

(१०) देशावगाशिक व्रत

साल भर में कम से कम एक दिन तो आरंभ समारंभ का सम्पूर्ण त्यागकर तपश्चर्यापूर्वक दस सामायिक करना।

(११) पौषध व्रत

यदि आजीवन साधु-जीवन स्वीकार न किया जा सकता हो तो भी साधु जीवन के अभ्यास के लिए साल भर में कम से कम एक दिन तो उपवास आदि तपश्चर्यापूर्वक पौषधव्रत को अंगीकार करना ही चाहिए। इस व्रत के समय आरंभ समारंभ त्यागकर १५ या १४ घंटे तक समभाव पूर्वक ध्यान ध्यान आदि क्रियाकांड में मग्न रहना चाहिए।

(१२) अतिथिसंविभाग व्रत

वर्ष में कम-से-कम एक दिन २८ घंटे तक चौविहार उपवासपूर्वक पौषध करना और पौषध के दूसरे दिन एकासन करना। एकासन के समय त्यागी गुरु महाराज को भोजनादि बहराना, उस समय वे जो वस्तु ग्रहण करें उसी वस्तु का उपयोग करना। यदि किसी कारणवश साधु महाराज का योग न हो तो अपने स्वधर्मीबंधु को भोजन कराना, भोजन करते समय वह जिन वस्तुओं का उपयोग करें उन्हीं वस्तुओं का स्वयं उपयोग करना।

उपर्युक्त इन बारह व्रतों का जो पालन कर सकता हो, उसे अवश्य इन व्रतों का पालन करना चाहिए, जो बारह व्रतों का पालन करने में असमर्थ हों उसे अपनी सामर्थ्य अनुसार आसानी से पाले जा सकें उतने व्रतों का पालन करना चाहिए। एक भी व्रत का ग्रहण करनेवाला व्रतधारी जैन कहलाता है।

और, जो एक भी व्रत का पालन नहीं कर सकते उन्हें सदैव प्रभुपूजन, दर्शन, गुरुवंदन, अभक्ष्य, कंदमूल तथा रात्रि भोजन का त्याग करना,

अच्छी पुस्तकों का स्वाध्याय, सधर्मी भक्ति, दीन दुखियों को यथाशक्ति दान, सामायिक, प्रतिक्रमण, तप जप और नमस्कार मंत्र का स्मरण इत्यादि नित्यकर्म श्रद्धापूर्वक करने चाहिए। इन आचारों को पालन करनेवाला व्यक्ति भी जैन कहलाता है।

और, यदि कुछ भी नहीं हो तो परमात्मा जिनेश्वरदेव ने जो उपदेश दिया है उन सर्वज्ञ कथित तमाम वचनों पर श्रद्धा रखना। इस प्रकार जिन-वचन पर श्रद्धा रखनेवाला भी जैन कहलाता है।

ऊपर कही हुई विधि अनुसार क्रिया करनेवाला धीरे धीरे कर्म के भार को हल्का कर सद्गति प्राप्त करता है और अन्त में शिवपुरी के अपूर्व आनंद का अनुभव करता है।

केवल इतने ही विवरण से समझ में आ सकता है कि, जैन धर्म कितना व्यावहारिक है। संसार के तमाम प्राणी जैन धर्म को अंगीकार कर, उसे आचरण में ला सकते हैं।

कितने ही इस बात को नहीं समझनेवाले अनभिज्ञ बिना सोचे एकदम बोल उठते हैं कि, जैन धर्म अव्यावहारिक है, परन्तु उन लोगों को पता नहीं कि, जैन धर्म के सिद्धान्त कितने विशाल हैं, उनकी कितनी उच्चता है और चाहे जैसा अदना से अदना प्राणी अल्प या अधिक परिमाण में उनका आचरण कर सकता है।

अन्त में जिसकी जैन धर्म के प्रति श्रद्धा हो वह भी जैन कहलाता है।

जैन धर्म के सिद्धान्तों को विशेष रूप से समझने के लिए उस उस विषय की अनेक पुस्तकों का श्रवण, पठन, चिंतन मनन करना चाहिए।

जैनसिद्धांत के अकेले कर्म स्थान के ऊपर ही कितने विशालकाय ग्रंथ आज भी मौजूद हैं। ज्योतिष विज्ञान, कर्म सिद्धांत, आत्मवाद, परमात्मवाद, आगमज्ञान, न्याय, व्याकरण, छंद, अलंकार, तर्क, आचार,

विचार इत्यादि अनेक विषयों के हजारों की संख्या में ग्रन्थ वर्तमानकाल में भी उपलब्ध हैं।

जिन्हें विशेष जिज्ञासा हो उन्हें उन्हीं विषयों के जैन ग्रन्थों का अभ्यास करना चाहिए।

यदि मध्यस्थ दृष्टिवाला प्राणी सच्चे त्यागी गुरुओं के पास रह सूक्ष्मता पूर्वक ऐसे अपूर्व ग्रन्थों का अवलोकन करता रहे, तो उसे अवश्य दिव्य दृष्टि प्राप्त होती है।



स्याद्वाद

जैन सिद्धांत पर स्याद्वाद की छाप है अर्थात् जैन-दर्शन में हर सिद्धांत पर स्याद्वाद की दृष्टि से विचार किया जाता है।

स्याद्वाद शब्द 'स्यात्' और 'वाद' दो पदों के मिश्रण से बना है। इसमें 'स्यात्' शब्द का अर्थ है 'कथंचित्' अथवा 'किसी अपेक्षा से', यह अर्थ दर्शाता है और 'वाद' सिद्धांत अथवा पद्धति का द्योतन करता है। इसीलिए 'स्याद्वाद' को 'अपेक्षावाद' भी कहा जाता है।

एक ही वस्तु एक दृष्टि से एक प्रकार की दिखती है पर वही वस्तु भिन्न अपेक्षा अथवा दृष्टि से भिन्न प्रकार की दिखती है। अतः किसी वस्तु को सम्पूर्ण रूप से समझने के लिए अनेक अपेक्षाओं अथवा दृष्टियों को ध्यान में रखना आवश्यक है। स्याद्वाद की यह मान्यता होने के फलस्वरूप उसे 'अनेकान्तवाद' भी कहा जाता है।

स्याद्वाद, अपेक्षावाद अथवा अनेकान्तवाद को समझने के लिए 'ढाल' का अथवा '६ अंधे और हाथी' का दृष्टान्त ठीक ठीक समझ लेना आवश्यक है।

ढाल की दूसरी ओर

एक ग्राम में एक वीर पुरुष की मूर्ति स्थापित की गयी। उसके एक हाथ में तलवार और दूसरे हाथ में ढाल थी। ढाल एक ओर रुपहली थी और दूसरी ओर सुनहली। एक बार दो यात्री दो भिन्न दिशाओं से मूर्ति के निकट आ पहुँचे और उस मूर्ति पर अपना अपना मत प्रकट करने लगे।

एक मुसाफिर बोला—"यह मूर्ति कितनी सुन्दर है। और, इसकी रुपहली ढाल का क्या कहना !"

यह सुनकर दूसरा यात्री बोला—"यह ढाल रुपहली नहीं, सुनहली है। आप ज़रा ठीक से देखिए।"

पहले यात्री ने बड़ी सावधानी से ढाल को पुनः देखा, बोला—"यह बिल्कुल रुपहली है। सोने का इसमें लेशमात्र अंश नहीं है।

दूसरे यात्री का धैर्य टूट गया और बोल पड़ा—"लगता है, तुम अन्धे हो, नहीं तो सुनहली ढाल को रुपहली कहते कैसे !"

इस प्रकार दोनों में वाद विवाद चल पड़ा और लड़ाई की नौबत आ पहुँची। इतने में ग्राम का एक सम्भ्रान्त पुरुष उस ओर आ निकला और विवाद का कारण जानकर बोला—"आप लोग व्यर्थ ही झगड़ रहे हो। यह ढाल रुपहली भी है और सुनहली भी है। एक दूसरे को मिथ्या सिद्ध करने की आवश्यकता नहीं है। आप लोग एक दूसरे की जगह पर जाकर पुनः ढाल को देखें तब ढाल का सही रंग समझ सकेंगे।"

दोनों ने उस सम्भ्रान्त व्यक्ति का कहना मानकर ढाल को स्थान परिवर्तन करके जो देखा तो उन्हें अपनी भूल समझ में आ गयी।

६ अन्धे और हाथी

एक बार एक स्थान पर ६ अन्धे एकत्र हो गये। उन सभी ने हाथी के सम्बन्ध में सुन रखा था पर कभी उसका साक्षात्कार उन्हें नहीं हुआ था। अतः वे राजा के महावत के पास गये और हाथी को स्पर्श करके उसका अनुभव करने के लिए उसकी विनती करने लगे।

महावत ने उन्हें अनुमति दे दी। अतः वे स्पर्श करके हाथी के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करने में जुट गये। पहले के हाथ में हाथी का कान आया। वह बोला—"हाथी तो सूप सरीखा है।" दूसरे के हाथ में सूँड़ आया। वह बोला—"नहीं, मुझे तो हाथी साँप-सा लगता है।" तीसरे

का हाथ हाथी के पैर पर पड़ा। अतः उसने कहा—"हाथी ठीक खम्भे सरीखा है।

चौथे ने सूँड छुआ और बोला—"यह तो सूँड जैसा है।"

पाँचवें का हाथ पेट पर पड़ा। पेट स्पर्श करके वह बोला—"यह तो पहाड़ की तरह लगता है।"

छठें ने पूँछ छूई और कहने लगा—"मुझे तो यह ठीक रस्सी की तरह लगता है।"

हर अन्धा यह समझता था कि, केवल उसकी बात सच है और सब झूठ कह रहे हैं। इस प्रकार उन अन्धों में विवाद हो गया।

महावत अन्धों की बात ध्यानपूर्वक सुन रहा था। विवाद होता देख कर वह निकट आकर बोला—"अरे भाई, तुम लोग क्यों विवाद कर रहे हो। तुम में से किसी ने पूर्ण रूप से हाथी का साक्षात्कार नहीं किया। तुम सबने उसका एक एक अंग स्पर्श किया है और उसी ज्ञान के आधार पर हाथी के रूप के सम्बन्ध में अपना अपना मत व्यक्त करना प्रारम्भ कर दिया है। इसी कारण तुम सब विवाद कर रहे हो। मैं तो नित्य हाथी देखता हूँ। अतः कह सकता हूँ कि, हाथी सूप की तरह भी है, मूसल के समान भी है, रस्सी के समान भी है, खम्भे के समान भी है और सूँड के समान भी है।"

महावत की बात सुनकर उन अन्धों को अपनी भूल का ज्ञान हो गया और वे चुप हो गये।

इन उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो गई होगी कि, व्यक्ति वस्तु को जिस अपेक्षा अथवा दृष्टि से देखता है, उसी दृष्टि से उसका वह वर्णन करता है। उसका वर्णन सत्य अवश्य है पर मात्र उसे दृष्टि में रखकर हम अन्य दृष्टि से उपलब्ध अनुभव को मिथ्या नहीं कह सकते। तात्पर्य यह कि, किसी वस्तु के स्वरूप को ठीक ठीक समझने के लिए विभिन्न अपेक्षाओं से उसे देखना आवश्यक है।

यदि इस रूप में वस्तु को देखा जावे तो जगत् की प्रत्येक वस्तु अनन्त धर्मात्मक सिद्ध होगी। एक विशेष उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जावेगी।

एक ही व्यक्ति क्षेत्र की अपेक्षा से 'आर्य' है, धर्म की अपेक्षा से वही 'जैन' कहलाता है, ग्राम की अपेक्षा से 'नागोरी' कहलाता है। पिता की अपेक्षा से वही 'पुत्र' है, पुत्र की अपेक्षा से वही 'पिता' है, पत्नी की अपेक्षा से वही 'पति' है और बहन की अपेक्षा से वही 'भाई' है। इस प्रकार भिन्न भिन्न अपेक्षाओं से इसी एक व्यक्ति में भिन्न भिन्न धर्म सम्भव हैं।

इसमें किसी एक अपेक्षा को ध्यान में रखकर उसका प्रतिपादन करना 'नय' कहलाता है। 'नय' में सत्य का अंश होता अवश्य है, परन्तु यदि अन्य धर्मों का निषेध किया जावे तो वह कथन को असत्य कर देता है।

पचहत्तर वर्ष का एक वृद्ध पुरुष है। उस वृद्ध पुरुष के पैंतालीस वर्ष का एक पुत्र है और उसके भी पन्द्रह वर्ष का एक पुत्र है।

अब यदि उस पैंतालीस वर्ष के मनुष्य को केवल पिता ही कहा जाय तो वह कथन मिथ्या ठहरता है क्योंकि वह उसी पचहत्तर वर्ष के वृद्ध पिता की अपेक्षा से पुत्र भी है। इसी प्रकार यदि उस पैंतालीस साल के मनुष्य को केवल पुत्र ही कहा जावे तो यह कथन भी मिथ्या होता है, क्योंकि वह अपने पन्द्रह वर्ष के पुत्र की अपेक्षा से पिता भी है। इस प्रकार यह एक ही व्यक्ति पिता भी है और पुत्र भी है।

इसीलिए, वस्तु के पूर्ण स्वरूप को समझानेवाला स्याद्वाद है। वस्तु के केवल एक ही गुण या धर्म को देखकर यह वस्तु ऐसी ही है, ऐसा कहना भ्रमात्मक है, क्योंकि उसी समय उसमें अनेक दूसरे गुणों का सद्भाव रहता है। स्याद्वाद को ठीक तरह से समझ लिया जावे, तो वस्तु का सच्चा स्वरूप जाना जा सकता है। आँखों से दिखाई देनेवाला यह जगत क्या है? उसकी वस्तुएँ कैसी हैं? उनका स्वरूप क्या है? उसके गुणधर्म कितने

हैं। इत्यादि वस्तुओं के सच्चे स्वरूप को समझानेवाला स्याद्वाद है। अहिंसावाद, अपरिग्रहवाद तथा स्याद्वाद इत्यादि जैनधर्म के मुख्य स्तंभरूप हैं और इसलिए जगत में जैन दर्शन सर्वोपरि कहा जाता है। इन सिद्धान्तों के कारण ही उसे विश्वधर्म कहा जा सकता है।

जैन दर्शन का अवलोकन करने पर अहिंसा का जो निदर्शन दृष्टिपथ में आता है, वह वस्तुतः मनुष्य को दिङ्मूढ़ बना देता है। पाप किसे कहना? वह किसमें रहता है? उसका स्वरूप, भाव दया और द्रव्य दया, हिंसा और अहिंसा का सच्चा पृथक्करण, कर्म दर्शन इत्यादि और तत्त्वज्ञान आपको जैन सिद्धांत में ही प्राप्त होगा।

卐

षड्‌द्रव्य

(१) धर्मास्तिकाय, (२) अधर्मास्तिकाय, (३) आकाशास्तिकाय, (४) पुद्गलास्तिकाय, (५) जीवास्तिकाय और (६) अद्धा समय अर्थात् काल—ये छः द्रव्य कहलाते हैं।

१ धर्मास्तिकाय—गमन करनेवाले प्राणियों और गति करनेवाली जड़-वस्तुओं को उनकी गति में सहायता पहुँचानेवाला पदार्थ 'धर्म' कहलाता है। अस्ति अर्थात् प्रदेश और काय अर्थात् समूह। ऐसे पदार्थों के प्रदेशों के समूह को धर्मास्तिकाय कहते हैं। मछली में गति करने का सामर्थ्य है और उसकी जाने की इच्छा भी है परन्तु वह निमित्त-कारण रूप पानी के बिना गति नहीं कर सकती। पानी के आलम्बन की तरह गति करने में सहायक होनेवाला द्रव्य ही 'धर्मास्तिकाय' है।

२ अधर्मास्तिकाय—'अधर्मास्तिकाय' प्राणी को ठहराने में सहायक होता है। यदि किसी स्थान पर सदाव्रत की अच्छी व्यवस्था हो, तो भिक्षुकों की इच्छा वहाँ ठहरने की होती है। ये सदाव्रत भिक्षुक लोगों के हाथ पकड़कर उन्हें वहाँ नहीं ले जाते, परन्तु उस निमित्त को पाकर भिक्षुक वहाँ निवास करते हैं। चलते चलते यात्री थक गया हो, तो उस समय वृक्ष की छाया की तरह 'अधर्मास्तिकाय' भी ठहरने में सहायक होती है।

३ आकाशास्तिकाय—इसका गुण अवकाश अर्थात् जगह देने का है। यद्यपि आकाश आँखों या दूसरी इन्द्रियों द्वारा देखा नहीं जा सकता, फिर भी अवगाहगुण द्वारा वह जाना जाता है। लोक सम्बन्धी आकाश को 'लोकाकाश' और अलोक सम्बन्धी आकाश को 'अलोकाकाश' कहते हैं। धर्मास्तिकाय तथा अधर्मास्तिकाय के सहयोग से ही लोक में जीव और

पुद्गलों की गति और स्थिति है। अलोक में इन दोनों पदार्थों का सद्भाव न होने से, वहाँ न तो एक भी अणु है और न जीव है। वहाँ लोक में से कोई भी अणु या जीव जा भी नहीं सकता, क्योंकि गति में सहायक और स्थिति करानेवाले उपादान दोनों 'धर्म या अधर्म' द्रव्य वहाँ नहीं हैं। आकाश द्रव्य विस्तार में अनन्त है अर्थात् उसका कहीं अन्त नहीं है।

४ पुद्गलास्तिकाय—परिपूर्ण होना और गिर पड़ना, अलग हो जाना इत्यादि स्वभाववाले पदार्थ को 'पुद्गल' कहते हैं। पुद्गल का कुछ हिस्सा चाक्षुष प्रत्यक्ष होता है और परमाणु जैसे कुछ पुद्गलों की सत्ता अनुमान प्रमाण द्वारा जानी जा सकती है। घड़ा, चटाई, पाट, महल, गाड़ी इत्यादि पदार्थ स्थूल पुद्गलमय है, क्योंकि ये सब पदार्थ हमारी दृष्टि में आते हैं। इनके सिवाय जो पुद्गल अत्यन्त सूक्ष्म हैं, उनकी सिद्धि अनुमान प्रमाण द्वारा हो सकती है, जैसे परमाणु उसके बाद द्व्यणुक फिर त्रसरेणु इत्यादि शब्द, प्रकाश, छाया, ताप और अन्धकार इत्यादि पुद्गल के ही प्रकार हैं।

५ जीवास्तिकाय—चैतन्यस्वरूप आत्मा को जीव कहते हैं। 'मैं सुखी हूँ, मैं दुःखी हूँ', ऐसा अनुभव किसी मृतक को नहीं होता क्योंकि उस समय उसमें चैतन्य स्वरूप आत्मा नहीं रहती। वह वर्तमान शरीर को छोड़ अपने कर्मानुसार दूसरे शरीर में चली जाती है। कुल्हाड़ी से लकड़ी काटी जाती है, परन्तु कुल्हाड़ी और काटनेवाला अलग अलग होते हैं। दीपक से देखा जाता है, परन्तु देखनेवाला और दीपक दोनों भिन्न भिन्न हैं। उसी प्रकार इन्द्रियों द्वारा रूप, रस इत्यादि ग्रहण किये जाते हैं। परन्तु, इन्द्रियाँ और उन विषयों का अनुभव करनेवाला दोनों अलग अलग हैं। आत्मा सफेद काली या पीली इत्यादि किसी वर्ण की नहीं होती इसीलिए उसका इन चर्मचक्षुओं द्वारा प्रत्यक्ष नहीं होता, फिर भी अनुमान प्रमाण से उसकी सिद्धि होती है।

६ काल—ढाई द्वीपवर्ती परम सूक्ष्मभाग है। [illegible]
हो सकते तथा एक समय रूप वहाँ होने से [illegible]
सकती। एक समान जातिवाले वृक्ष इत्यादि में [illegible]
समय के कारण विचित्र परिवर्तन होते हुए [illegible]
'काल' की नियामकता सूचित करती है। [illegible]
इस विद्यार्थी की अवस्था छोटी है, यह [illegible]
बिना कैसे सम्भव हो सकती है? इसलिए [illegible]
करना सुगम तथा शंकाविहीन है।

जैन-दर्शन सम्मत इन ६ द्रव्यों पर [illegible]
है। अब तो वैज्ञानिक भी मानने लग गये हैं [illegible]
आदि क्रियाओं के स्वतन्त्रता जाय और वह [illegible]
व्यापार से हिलते डुलते तथा ठहरते हैं, कि [illegible]
रूप से किसी एक शक्ति की अपेक्षा रखना है [illegible]
'धर्मास्तिकाय' के अस्तित्व में प्रबल प्रमाण है। [illegible]
अधिक विस्तृत है कि, उस विषय के [illegible]
निर्माण हो सकता है, परन्तु यहाँ स्थान [illegible]
वर्णन किया है।

जैन-तप

जैनों की तपश्चर्या विश्व विख्यात है। जैनों के उपवास बड़े कठिन होते हैं। इनमें रात्रि या दिन के समय फलाहार, मावा, मिष्ठान, छास या मोसम्बी इत्यादि कोई भी वस्तु नहीं ली जाती। तपश्चर्या इन्द्रियों का दमन करने के लिए की जाती है। जैन लोग अपनी आत्म शुद्धि के लिए ऐसी उग्र तपश्चर्या प्रसन्नतापूर्वक महीने महीने तक करते हैं। ऐसी विधिपूर्वक तपश्चर्या करने से शरीर शुद्धि भी होती है तथा अनेक असाध्य रोग जड़ मूल से नष्ट हो जाते हैं। उपद्रव दूर होते हैं, अशुभ कर्मों (पाप) का नाश होता है, अन्तराय कम नष्ट हो जाता है। आत्मा पुण्यशाली, सुखी और समृद्ध बनती है। इच्छा की आधाररूप होती है। ऐसी तपश्चर्या करने से हजारों जीवों की रक्षा होती है, इसलिए तप में दया भी समायी हुई है। तप से धर्म बढ़ता है, पाप घटता है। सुख बढ़ता है और दुःख घटता है, समृद्धि बढ़ती है और दरिद्रता नष्ट होती है। आत्मा प्रभावशाली बनती है इसलिए प्रत्येक मनुष्य को अपनी शक्ति के अनुसार ऐसी तपश्चर्या करनी चाहिए।

लौकिक पर्वों के समय दूसरे लोग अपनी आत्मा का असली स्वरूप भूलकर ऐश आराम में तल्लीन रहते हैं, अपनी इच्छानुसार जहाँ-तहाँ विचरण करते हैं, पर जैन पर्वों की यह महत्ता है कि, उस समय वे इन्द्रिय दमन, तप, त्याग और संयमी जीवन बिताने का पाठ सिखाते हैं। जैनों का सभी पर्व साधकों को अपूर्व ज्ञान अर्पित करता है।

***

ज्ञान क्रियाभ्यां मोक्षः

जैन-सिद्धान्त का आदेश है कि, केवल अकेले 'ज्ञान' तथा अकेली 'क्रिया' से मुक्ति नहीं मिलती। अकेला ज्ञान लंगड़ा है और अकेली क्रिया अंधी है। रथ दो पहियों द्वारा ही चल सकता है। मनुष्य दो भुजाओं द्वारा दुर्लंघ्य समुद्र को तिर सकता है। उसी तरह आत्मा भी 'सम्यग्ज्ञान' तथा 'सम्यक् क्रिया' द्वारा ही मुक्ति प्राप्त कर सकती है। एक आदमी बम्बई जाने का रास्ता जानता है, पर वह केवल रास्ता जानने मात्र से ही वहाँ तक नहीं पहुँच पाता, वहाँ पहुँचने के लिए उसे चलना होगा, चलने से ही धीरे धीरे वह अपने इष्टस्थान तक पहुँच सकता है। भोजन का नाम लेने मात्र से क्षुधा की शांति नहीं होती, उसके लिए भोजन बनाने की क्रिया करनी पड़ती है। पहले अंगीठा जलाना, आटे का भोजन बनाना के बाद भी जब तक खाने की क्रिया नहीं की जाती तब तक उदरपूर्ति नहीं होती। हाथ से निवाला उठाकर मुँह में डालने के बाद ही क्षुधा शांत होती है। उसी प्रकार 'सम्यग्ज्ञान' युक्त सम्यक् क्रिया की जाये तभी प्राणी मुक्तिपुरी में पहुँच सकता है। क्योंकि, अनन्तकाल से आत्मा अज्ञान और असत्प्रवृत्ति द्वारा ही इन कर्मों को बाँध रहा है। उन्हें नष्ट करने के लिए सम्यग्ज्ञान और सम्यक् क्रिया की आवश्यकता है।

***

रात्रि-भोजन

जैन शास्त्रों में रात्रि भोजन विशेष रूप से निषिद्ध माना गया है। रात्रि भोजन करने से अनेक सूक्ष्म तथा बादर और छोटे तथा बड़े जीवों की हिंसा होती है। सूर्यास्त होते ही और संध्या के प्रारम्भ होते ही अंधकार फैलने लगता है। उस समय अगणित सूक्ष्म जीव उड़ने लगते हैं। उन्हें हम बिजली के प्रकाश में भी नहीं देख सकते। ये समस्त जीव जो हमें दृष्टिगोचर नहीं होते रात्रि भोजन से नाश को प्राप्त होते हैं। रात्रि के समय भोजन करने से कभी कभी विषाक्त जीव आ जाने से मरण भी हो जाता है। यदि व्यक्ति जूँ खा जाये तो जलोदर रोग हो जाता है। कीड़ी खा जाये तो बुद्धि नष्ट हो जाती है, काँटा-सरीखा सूक्ष्म शूल आ जाये तो भयंकर कष्ट भोगना पड़ता है और कभी कभी प्राण से भी हाथ धोना पड़ता है। ऐसी स्थिति में रात्रि भोजन का त्याग शारीरिक दृष्टि से कितना आवश्यक है, यह बात सहज ही समझ में आ सकती है। जिस प्रकार किसी मजदूर को मजदूरी करने के बाद विश्राम की अपेक्षा होती है, उसी प्रकार पेट को भी विश्राम अपेक्षित है।

रात्रि भोजन करनेवाला व्यक्ति इस लोक में मृत्यु प्राप्त करने के पश्चात् परलोक में बिल्ली, गृद्ध, कौआ, शूकर, बिच्छी, गुबरैले आदि पशु की योनि में जन्म लेता है। रात्रि भोजन वस्तुतः नरक का द्वार है।

चत्वारि नरक द्वाराणि, प्रथमं रात्रि भोजनं।
परस्त्री गमनं चैव, संधानानन्तकायिके॥

—नरक के चार द्वार हैं।

(१) रात्रि भोजन (२) परस्त्रीगमन (३) कच्चे बिना सूखे फल का अचार और (४) अनन्तकायिक कन्द भोजन करना।

मद्य मांसाशनं रात्रौ भोजन कन्द भक्षणं।
ये कुर्वन्ति वृथा तथा, तीर्थयात्रा जपस्तपः॥

—जो व्यक्ति मद्य, मांस, रात्रि भोजन और कन्द भक्षण करता है, उसके लिए तीर्थयात्रा, जप और तप सब व्यर्थ है।

मारकण्डेय पुराण में मारकण्डेय ऋषि ने कहा है—

अस्तंगते दिवानाथे, आपो रुधिरमुच्यते।
अन्न मांस समं प्रोक्त, मारकण्डेय महर्षिणा॥

—सूर्यास्त के पश्चात जल पीये तो वह रुधिर के समान है और अन्न मांस के समान है।

मृते स्वजन मात्रेऽपि, सूतके जायते किल।
अस्तंगते दिवानाथे, भोजन क्रियते॥

—स्वजन की मृत्यु पर जैसे सूतक लगता है, व्यक्ति कुछ खाता नहीं तो फिर दिन के नाथ—सूर्य—के अस्त होने पर भोजन कैसे किया जा सकता है।

कहा गया है—

ये रात्रौ सर्वथाऽऽहारं, वर्जयन्ति सुमेधस ।
तेषां पक्षोपवासस्य, फलं मासेन जायते ॥

—जो व्यक्ति रात्रि भोजन का त्याग करता है, उसे मास में पन्द्रह दिन उपवास करने का फल मिलता है।

अत स्पष्ट है कि, हिंसा के महान् दोष से बचने के निमित्त सुज्ञ जन रात्रि भोजन का त्याग करते हैं।

***

यन्त्रवाद ने आज हजारों आदमियों को बेकार बना दिया है। मनुष्य आज दीन, हीन और निर्वीर्य बन गया है, इस परिणाम का कारण आज का यह यन्त्रवाद ही है। जैसे जैसे विज्ञान प्रदत्त साधन बढ़ते गये, वैसे वैसे दुनिया में दुःख और अशांति बढ़ती ही गयी है। प्राचीन काल में देश कितना सुखी और समृद्ध था? देश में कैसी शांति थी? आज तो चारों ओर भय का आतंक छाया हुआ है। विश्व में अशांति फैली हुई है। पर, मनुष्य को अभी यह समझ में नहीं आता।

हमारे ही शास्त्रों द्वारा इन लोगों ने शोध के कार्य को आगे बढ़ाया और इतने बड़े आविष्कार किये हैं क्योंकि हमारे पूर्व महापुरुष बड़े ज्ञानी थे।

हजारों वर्ष पहले ऐसी यन्त्र सामग्री नहीं थी, ऐसे आविष्कार के ऐसे साधन नहीं थे फिर भी विज्ञान द्वारा जो जो बातें सिद्ध होकर प्रकाश में आती हैं, उन सब वस्तुओं को ऋषि मुनि लोग अपने अप्रतिमज्ञान द्वारा देखकर पहले ही कथन कर गये हैं क्योंकि वे महापुरुष सात्विक महाज्ञानी थे।

शास्त्रों में जब हम पहले विमानों की बातें सुनते थे तब अनेक लोग बहुत जल्दी बोल उठते थे कि यह सब गप है। पर, जब साक्षात् विमान उड़ने लगे तब उन्हें मालूम हुआ कि, शास्त्रों में वे महापुरुष जो कुछ लिख गये वह सब पूर्ण सत्य था।

जगदीशचन्द्र बसु ने जब प्रयोग द्वारा यह सिद्ध कर बताया कि, वनस्पति में जीव है, प्राणी के स्वभाव के अनुसार वह सुख दुःख का अनुभव करती है और उसका संकोच विस्तार होता रहता है, तब कहीं बाहर के लोग वनस्पति में जीव मानने लगे। परन्तु, हमारे प्राचीन जैन शास्त्रों में तो हजारों वर्ष पहले से ही यह सब बताया गया है।

जगदीशचन्द्र बसु ने वर्षों पहले जर्मनी में भाषण देते समय बताया था कि, मैंने वनस्पति में जीव की सिद्धि कर सबके सामने जो यह बात

[illegible] चर, वनस्पतिकायिक जीव, [illegible], इंद्रियां, [illegible], [illegible]-पद्धति आदि अनेक बातें जो [illegible] शास्त्रों में थीं, [illegible] उन्होंने विज्ञान द्वारा आविष्कार किया है।

[illegible] का विज्ञान अधूरा है, अपूर्ण है, इसलिए [illegible] नहीं [illegible] [illegible] रहती हैं। वैज्ञानिकों को बार बार अपना सिद्धान्त [illegible] [illegible] है। कुछ वर्ष पहले अमेरिका के पास हजारों [illegible] [illegible] एक लघु प्रकाश में आया। ये सभी नया नहीं [illegible] ही यह सिद्ध [illegible] है कि, वे अभी भी अधूरे और अपूर्ण हैं।

अपूर्ण अधूरे आदमियों पर हम जो पूर्ण विश्वास [illegible] हैं, यह हमारी कितनी बड़ी विवेकहीनता है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हो रहे हैं।

कप्तान स्कोर्सबीन ने सूक्ष्मयन्त्र द्वारा पानी के एक बिन्दु में [illegible] फिरनेवाले ३६४ ० जीव सिद्ध कर बताये। जब कि, हमारे [illegible] [illegible] [illegible] एक बिन्दु में चलने फिरनेवाले जीवों के अतिरिक्त [illegible] [illegible] जीव भी असंख्य हैं। पर, वे सब [illegible] द्वारा [illegible] [illegible] सकते हैं।

वैज्ञानिक लोग पहले यह बतलाते थे कि, एक सूई की नोक जितना जगह में सैकड़ों परमाणु रह सकते हैं। अब वे ही वैज्ञानिक सूक्ष्म दर्शक यन्त्र द्वारा देखकर यह बता रहे हैं कि सूई की नोक जितनी जगह में लाखों अणु भी रह सकते हैं। इसके विपरीत हमारे पूर्वोक्त ज्ञानी तो ऐसा कहते हैं कि, एक सूई की नोक जितनी छोटी जगह में अनन्तानन्त परमाणु, जीव आदि रह सकते हैं।

वैज्ञानिक तो जैसे जैसे उन्हें साधन मिलते गये, वैसे वैसे आगे बढ़ते गये और पहले को मिथ्या ठहराते गये। उनका किसी चीज का नवीन ज्ञान होने पर, तदनुसार अपना मत बदलना किसी अंश में ठीक है, क्योंकि अपूर्ण पुरुष पूर्ण बात किस प्रकार कह सकता है? तब अपूर्ण को पूर्ण मान लेने में कितनी भूल होती है, उसे पाठक सहज ही समझ सकेंगे।

इसलिए पूर्ण वस्तु को पूर्ण रूप से स्वीकार करने में तथा ऐसे सच्चे ज्ञान को बतानेवाले परमात्मा की उपासना करने में मनुष्य क्यों भूल करता है, यह समझ में नहीं आता। इसका कारण केवल एक ही है, उसका भवभ्रमण अभी बाकी है। इसलिए वह सच्चे को मिथ्या मानता है।

अभी तक दुनियाँ की जितनी खोज हुई है, उन्हींके अनुसार संसार के नक्शे चित्रित किये जाते हैं, परन्तु अब वे नक्शे भी झूठे सिद्ध हो रहे हैं। क्योंकि, अभी कुछ इस प्रकार के ताजे समाचार प्रकाशित हुए हैं कि, अभी तक दुनियाँ की जितनी खोजें हुई हैं, उतनी ही अभी दूसरी दुनियाँ है। तब जैन शास्त्र तो पुकार पुकारकर कहते हैं कि, दुनियाँ बहुत विशाल है। असंख्यात योजन प्रमाण हैं। आज का विज्ञान सीमित है, इसलिए उसकी बातें कुएँ के मेंढक के समान है। कुए का मेंढक दुनियाँ को कुएँ जितना ही बतलाता है, पर उसकी बात कोई नहीं मानता। उसी प्रकार अधूरी शोध खोज करनेवालों की भी ऐसी बातें नहीं मानी जा सकती।

स्थित है। उन सात ताराओं की शृंखला घूमती है, इसलिए वह घूमती हुई नीचे पड़ती है और ध्रुव घूमता नहीं इसलिए वह स्थिर दीखता है। यदि पृथ्वी घूमती होती तो अन्य तारों की तरह ध्रुव भी घूमता हुआ दिखाई देता। परन्तु ऐसी बात नहीं है। इसलिए हम युक्ति से भी समझ सकते हैं कि पृथ्वी स्थिर है, वह घूमती नहीं, और यह सिद्धान्त भी अनादिकालीन है कि पृथ्वी स्थिर है। सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र तथा तारागण चक्कर लगाते रहते हैं। और, उसी प्रकार हम अनुमान से भी जान सकते हैं।

पृथ्वी को भ्रमणशील माननेवालों में भी अब मतभेद उत्पन्न होने लगे हैं। उनमें कुछ लोग अब पृथ्वी को स्थिर मानने लग गये हैं। इसलिए, केवल कल्पना करनेवालों पर परिपूर्ण विश्वास नहीं रखा जा सकता। परिपूर्ण विश्वास केवल सिद्धान्त पर ही रखा जा सकता है।

सिद्धांत का प्ररूपण सर्वज्ञ परमात्मा ने किया है, इसलिए वह शाश्वत और अविचल है।

यह सिद्धान्त त्रिकालाबाधित है। इसका किसी भी काल में परिवर्तन नहीं हो सकता। परिवर्तन झूठ का होता है, सत्य का नहीं। सत्य का परिवर्तन होने पर उसकी गणना झूठ में होगी। जैसे दो और दो चार होते हैं, हजारों वर्ष पहले भी ये दो और दो चार ही थे और आगे भी ये दो और दो चार ही रहेंगे। इस प्रकार तीनों काल में दो और दो चार ही रहेंगे। क्योंकि, वह सत्य है। दो और दो को तीन या दो और दो को पाँच कहें तो वह झूठ गिना जायगा। इसी प्रकार सर्वज्ञ द्वारा प्ररूपित सिद्धान्त त्रिकालाबाधित है और सत्य है।

***

जैन धर्म अनादिकालीन है

जगत की दृष्टि में

जैन धर्म के विशाल संस्कृत साहित्य को यदि पृथक कर दिया जाये तो संस्कृत कविता की क्या दशा होगी! इस सम्बन्ध में जैसे जैसे मेरे ज्ञान की वृद्धि होती है, वैसे-वैसे मेरे आनन्दयुक्त आश्चर्य में वृद्धि होती है।

डॉ हर्टल (जर्मनी)

जैन दर्शन स्वतंत्र दर्शन है। मैं अपना यह निश्चय प्रकट करता हूँ कि, जैन धर्म मूल धर्म है। वह सब दर्शनों से बिल्कुल भिन्न और स्वतन्त्र है। प्राचीन भारतवर्ष के तत्त्वज्ञान और धार्मिक जीवन के अभ्यास के लिए वह बहुत अधिक महत्त्वपूर्ण है।

डॉ हर्मन याकोबी (जर्मनी)

जैन दर्शन बहुत ही ऊँचा कोटि का है। इसके मुख्य तत्त्व विज्ञानशास्त्र के आधार पर रचे गये हैं। जैसे-जैसे पदार्थविज्ञान आगे बढ़ता जाता है, वैसे वैसे जैन धर्म के सिद्धांतों की भी सिद्धि होती जाती है।

डॉ एल पी टेसीटोरी
इटालियन विद्वान

जैन धर्म यथार्थ में न तो हिंदूधर्म है और न वैदिकधर्म है। यह भारतीय जीवन, संस्कृति तथा तत्वज्ञान का मुख्य साधन है।

जवाहरलाल नेहरू

जैन धर्म का उद्भव और इतिहास स्मृति शास्त्र तथा उनकी टीकाओं से बहुत प्राचीन है। जैन धर्म हिंदू धर्म से बिल्कुल भिन्न और स्वतंत्र है।

श्री कुमारस्वामी शास्त्री
मद्रास हाइकोर्ट के प्रधान न्यायमूर्ति

विश्व के अप्रतिम विद्वान् जार्ज बर्नार्ड शा ने एक बार देवदास गांधी से कहा—"जैन धर्म के सिद्धान्त मुझे बहुत प्रिय हैं। मेरी यह इच्छा है कि, मृत्यु के बाद मैं जैन परिवार में जन्म ग्रहण करूँ।"

जैन धर्म के सिद्धांतों के प्रभाव के कारण वे निरामिष भोजन करते थे।

जार्ज बर्नार्ड शा

जैन धर्म ने संसार को अहिंसा की शिक्षा दी है। किसी दूसरे धर्म ने अहिंसा की मर्यादा यहाँ तक नहीं पहुँचायी। जैन धर्म अपने अहिंसा सिद्धांत के कारण विश्वधर्म होने के लिए पूर्णतया उपयुक्त है।

डॉ० राजेन्द्र प्रसाद

जैन धर्म में उच्च आचार विचार और उच्च तपश्चर्या है। जैनधर्म के प्रारंभ को जानना असंभव है।

फरलांग
मेजर जनरल

ऋग्वेद में भगवान् ऋषभदेव के सद्भावज्ञापक मन्त्र में बताया गया है।

ऋषभं मासमानानां सपत्नानां विषासहिंहन्तारं शत्रूणां कृधि विराजं गोपितं गवाम् १०—२१—२६

जैन सिद्धान्त अर्भकरूप से प्राचीन धर्म रहा है, क्योंकि 'अग्न इदं दधसे विश्वमभ्वम्' इत्यादि वेद वाक्यों से भी इसकी प्राचीनता मालूम पड़ती है।

प्रो० विरूपाक्ष, एम० ए०, वेदतीर्थ
वैदिक विद्वान्

कन्नड़ भाषा के आद्यकवि जैन ही थे। प्राचीन और उत्कृष्ट साहित्य रचना का श्रेय जैनों का है।

रा० ब० नरसिंहाचार्य

आधुनिक ऐतिहासिक शोध से यह प्रकट हुआ है कि, यथार्थ में ब्राह्मण धर्म के सद्भाव अथवा उसके हिन्दूधर्मरूप में परिवर्तित होने के बहुत पहले जैन धर्म इस देश में विद्यमान था।

न्यायमूर्ति रांगणेकर
बंबई हाईकोर्ट

मोहनजोदड़ो, प्राचीन शिलालेख, गुफाएँ तथा अनेक प्राचीन अवशेषों के प्राप्त होने से भी जैन धर्म की प्राचीनता का ख्याल आता है।

जैन मत तब प्रचलित हुआ जब कि, सृष्टि की शुरुआत हुई। मैं तो यह मानता हूँ कि, वेदान्त दर्शन से भी जैन धर्म बहुत प्राचीन है।

स्वामी राममिश्रजी शास्त्री
प्रो० संस्कृत कालेज बनारस

मेरे इस कथन में थोड़ा भी अतिशयोक्ति नहीं है कि, वेदरचना के काल के पहले भी जैन धर्म अवश्य था।

डा० एस० राधाकृष्णन
राष्ट्रपति

जैन साधु वस्तुत प्रशंसनीय जीवन व्यतीत करते हैं। जैन साधु पूर्ण रूप से व्रत, नियम और इन्द्रिय-संयम का पालन कर विश्व में आत्मसंयम का एक शक्तिशाली तथा उत्तम आदर्श उपस्थित करते हैं।

एक गृहस्थ का जीवन भी जिसने कि जैनत्व (जैन आचार विचार का पालन करनेवाला) अंगीकार किया है, वह इतना अधिक निर्दोष होता है कि, भारतवर्ष को उस पर अभिमान होना चाहिए।

डॉ० सतीशचन्द्र विद्याभूषण
एम्. ए., पी. एच. डी. कलकत्ता

ग्रंथों तथा सामाजिक व्याख्यानों से यह बात प्रकट होती है कि, जैन धर्म अनादिकालीन है। यह विषय निर्विवाद और मतभेद विहीन है तथा इस विषय में इतिहास के प्रबल प्रमाण भी हैं।

—लोकमान्य बालगंगाधर टिळक

ऐतिहासिक संसार में जैन-साहित्य जगत के लिए सबसे अधिक उपयोगी है। वह इतिहास लेखकों तथा पुरातत्त्व विशारदों के लिए अनुसंधान की विपुल सामग्री अर्पित करता है।

डॉ० सतीशचन्द्र विद्याभूषण
एम. ए. पी. एच. डी., कलकत्ता

विश्वशांति-संस्थापक सभा के प्रतिनिधियों का हार्दिक स्वागत करने का अधिकार केवल जैनों को ही है क्योंकि अहिंसा ही विश्वशांति का साम्राज्य पैदा कर सकती है और जगत को इस अनोखी अहिंसा की भेंट जैनधर्म के नियामक तीर्थंकर परमात्माओं ने की है। इसलिए, विश्वशांति की घोषणा प्रभुश्री पार्श्वनाथ और महावीर के अनुयायियों के सिवा और दूसरा कौन कर सकता है।

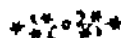
—डॉक्टर राधाविनोद पाल

जैन लोग प्रचुर परिमाण में विपुल लोकोपयोगी साहित्य छोड़ गए हैं।

—प्रो. जोहान्स हर्टल

पश्चिम के इस दिशा में इतने अधिक मशगूल हैं कि, मनुष्य मनुष्य का नाश करते समय भी थोड़ा सा हिचकिचाहट का अनुभव नहीं करते। इसलिए, जैन धर्म एक ऐसा अद्वितीय धर्म है कि, जो प्राणी मात्र की रक्षा करने के लिए क्रियात्मक प्रेरणा देता है। जैन लोग खाने-पीने या चलने में भी दूसरे प्राणियों की रक्षा का ख्याल रखते हैं। मैंने ऐसा दया भाव किसी दूसरे धर्म में नहीं देखा।

अमेरिकन महिला ओर्डीशाज़ेरी
(४-२-२३ के दिल्ली के भाषण में)



पुनर्जन्म के कुछ प्रमाण

[१]

सेवन्तीलाल माणेकलाल-कथित पूर्वजन्म का विवरण

लगभग तीन वर्ष की उम्र में ही कोई कोई नाम सुनकर मुझे ऐसा लगता कि, यह नाम मैंने पहले कभी सुना है और किन्हीं वस्तुओं को देखने पर लगता कि, इसे पहले कभी देखा है। इस प्रकार विचार करते करते मुझे ऐसा लगने लगा कि, किसी भव में मुझे पत्नी थी और बच्चे थे। ये विचार मुझे उठ रहे थे कि, एक दिन मेरे पिता ने मुझे ककड़ी का एक टुकड़ा दिया। मैंने उनसे कहा—"मैं तो आपका इकलौता पुत्र हूँ। आप मुझे इतना छोटा सा टुकड़ा क्या दे रहे हैं? पूर्व भव में मुझे ६ ६ बच्चे थे पर मैं तो उन्हें पूरी पूरी ककड़ी खाने को देता था।" मेरी बात सुनकर घर में सबको आश्चर्य होने लगा कि, यह नन्हा-सा बच्चा भला क्या कह रहा है? पर, मेरी बात पर किसी ने अधिक ध्यान नहीं दिया। बाद में मैं कहने लगा—"मैं श्रावक था और मेरा नाम कपूरचन्द था। पाटन में मेरा घर था। मेरी तीन पत्नियाँ थीं और मुझे ६ बच्चे थे।" मैं बच्चों का नाम बताता। मुझे ६ लड़के और एक लड़की थी। पूना में मेरी दो दूकानें थीं—एक कपड़े की और दूसरी गोल्ड की। ५६ वर्ष का मेरा आयुष्य था। मेरी तीन पत्नियों में दो पत्नियाँ बहुत अच्छी न थीं पर एक बड़े दिल स्वभाव की थी। मरने से पूर्व मुझे लकवा लग गया था अतः मैं लकड़ी लेकर चलता था।

मुझे एक बहन थी जो उम्र में मुझसे तीन वर्ष बड़ी थी। वह मेरे घर में काम-काज सँभालनेवाली थी। उसके पति का नाम

नाकरडो था। मेरी तत्माम माँ उस समय मेरी बहन थी। पाटन में तबोगीवाड़ा में मेरा घर था। उसमें इमली का पेड़ था। मैंने आत्माराम जी महाराज, कमलसूरि जी महाराज तथा उमेदविजय जी महाराज का दर्शन किया था।

उसके बाद के दूसरे भव में मैं ब्राह्मण हुआ। मेरा आयुष्य २५ वर्ष मात्र रहा। मैंने विवाह नहीं किया। ब्राह्मण वाले भव के सम्बन्ध में मैं केवल इतनी ही बात जानता हूँ।

मैं इन बातों को कहता तो घर के हर व्यक्ति कहते कि यह क्या है? पर, वे इस पर कुछ विशेष ध्यान न देते।

एक समय मेरी माता पाटन गयी। उस समय मेरी उम्र केवल तीन ही वर्ष की थी। अतः मैं भी माँ के साथ गया। स्टेशन पर उतरा। इस भव में पाटन जाने का यह मेरा पहला ही अवसर था। मैंने माँ से कहा—"आप लोग मेरा कहना सच नहीं मानती थीं। पर, आज मैं अपना घर आपको बताऊँगा।" माँ ने कहा—"बताओ! मैं भी तुम्हारा घर देखूँ।" मैं माँ को तबोगीवाड़ में अपने घर ले गया। घर अच्छी दशा में नहीं था। उसे दिखा कर मैंने कहा—"यह मेरा मकान है।" दो चार पड़ोसियों को बताया। महल्ले के सभी देवमन्दिरों (घर मन्दिर) में ले गया। महाराज साहब का फोटो दिखा कर बताया कि, 'यह आत्माराम जी महाराज हैं,' 'यह कमलसूरि महाराज हैं', और 'यह उमेदविजय जी महाराज हैं।' इस पूरा हकीकत को जानकर पाटन में सब लोग नतमस्तक हो गये। हजारों लोग मुझे देखने आते। लगभग २४ मास ऐसा ही चलता रहा। गायकवाड़ सरकार ने जाँच करने के लिए कुछ अफसर पाटन भेजा। मैं भी पाटन बुलाया गया।

उन लोगों ने मुझसे कहा—"अन्य कोई तथ्य बताओ।" उस समय पाटन में सुखड़ीवाड़ में डाह्याचंद आलमचन्द की पेढ़ी चलती थी।

वहाँ मेरा (पाम के भव के नाम सेवन्तचंद्र रामचन्द्र के नाम का) खाता चलता था। मैं उस दूकान पर जाँच करनेवाले अफसरों को ले गया। उनके सामने ३० ४० वर्ष पुराने कागज निकलवा कर अपना खाता निकलवाया।

पाम के भव का मेरे पुत्र का पुत्र मुझे देखने के लिए आया। उसे देखते ही मैं बोला—"तुम तो मेरे बच्चे हो। तुम्हारा नाम मणिलाल है।" उसने भी मेरी बात स्वीकार कर ली।

सेवन्तोलाल (चाणसमा)

[२]

छतरपुर के शिक्षा विभाग के निरीक्षक श्री मनोहरलाल मिश्र की पुत्री स्वर्णलता अपने पूर्व जन्म की बातें बताती है। मिश्रजी एक दिन अपनी पुत्री के साथ जबलपुर गये। वहाँ वे किसी ऐसी जगह की तलाश में थे, जहाँ वह पानी पी सकें। इसी बीच स्वर्णलता ने चाय की एक छोटी-सी दूकान दिखा कर कहा—"चलिए पिता जी, यह अपना ही मकान है। इसमें चाय-पानी कर लीजिए।" यह सुनकर श्री मनोहरलाल मिश्र को हुआ कि, इस लड़की को भ्रम हो गया है। यहाँ तो किसी से जान पहचान भी नहीं है, फिर यहाँ अपना होटल कहाँ से आ गया?" पर, पिता की चिन्ता किये बिना स्वर्णलता उस छोटे से होटल में घुस गयी। और, अपने पूर्वजन्म के छोटे भाई हरिप्रसाद को सम्बोधित करके बोली—"हरी! मुझे पीने के लिए पानी तो लाना। बड़ी प्यास लगी है।'

अज्ञात लड़की के मुख से अपना नाम सुन कर हरिप्रसाद पाठक चकित रह गया। उसे आश्चर्य में पड़ा देखकर लड़की बोली—"हरी तू मुझे नहीं पहचानता। मैं तुम्हारी बड़ी बहन किशोरी हूँ।" उसकी बात सुन कर हरी अपने पूरे कुटुम्ब को बुला लाया। सन् १९३९ तक उस

परिवार में जितने भी व्यक्ति थे, सब के नाम उस लड़की ने बताये। छोटी उम्र में उसके भाई जिस नाम से बुलाये जाते, उन नामों को स्वर्णलता ने बताया। उसके बाद उस लड़की के ससुराल पक्ष के लोग बुलाये गये। उसने अपने तीन पुत्र और दो पुत्रियों को पहचान लिया। उनमें एक बच्चे ने अपना नाम गलत बताया तो स्वर्णलता बोली—"माता के सामने झूठ बोलते लज्जा नहीं आती ?"

उसके बाद उसके पूर्वजन्म के पति चिन्तामणि पाण्डेय आये। लड़की से पूछा गया कि यह कौन है? पूछे जाने पर वह १० वर्ष की लड़की शरमा गयी। और, बोली—"यह वही हैं, जिनसे मेरा विवाह हुआ था। पालकी में बैठकर मैं ससुराल गयी थी। तब यह घोड़े पर थे। रास्ते में इनका घोड़ा भड़क गया था और चार आदमियों को दबाने के बाद घोड़े ने इन्हें पटक दिया था। ये बहुत घायल हो गये थे और महीनों चारपाई पर पड़े रहे।" यह सब सुनकर उसके पिता मनोहरलाल मिश्र के साथ उपस्थित सभी चकित रह गये।

उस लड़की की परीक्षा लेने के लिए सागर विश्वविद्यालय के उप कुलपति श्री द्वारकाप्रसाद मिश्र, मनोविज्ञान के पंडित श्री मोहनलाल पारा और गंगापुर के विख्यात मानसशास्त्री श्री एच० एन० बनर्जी आये। उसकी परीक्षा के बाद उन लोगों ने मत व्यक्त किया—"इस लड़की को अपने पूर्वजन्म की बातें याद हैं, इसमें शङ्का नहीं है।"

इन लोगों के समक्ष उस लड़की ने कहा—"१९३९ में मेरी मृत्यु हुई। इस जन्म से पहले मैं सिल्हट (आसाम) में पैदा हुई थी। वहाँ मेरे घर के लोग गाने का काम करते थे।" उस लड़की ने असमी भाषा के दो गाने सस्वर गाकर सुनाये। उसने कुछ लोगों के नाम भी

आये। वहाँ ९ वर्ष की उम्र में मेरी मृत्यु हुई। [illegible]
रा जन्म हुआ।

द्वितीय जन्म का बात की सत्यता की जाँच के [illegible]
लड़का को आसाम ले जाने की तैयारी कर रहे हैं। [illegible]
१० वर्ष की लड़की ने अपने पूर्व जन्म के [illegible]
राखी बाँधी। स्वर्णलता पूर्वजन्म के सुख-दुःख [illegible]
करती है। उसके पूर्व जन्म के वृद्ध माता और [illegible]
से सुनते हैं।

विशेषज्ञों के कथनानुसार आत्मा अमर है [illegible]
योनियों में जन्म लेते हैं। यह मान्यता इस [illegible]
हो जाता है।

अभी भी यह लड़की जबलपुर में है। [illegible]
और छोटे भाई भी जबलपुर आ गये हैं। [illegible]
उतरते थे, वहाँ इस लड़की को देखने [illegible]
लोगों की भीड़ लगी रहती है।

[illegible]

[३]

बरेली, यहाँ पुनर्जन्म में विश्वास [illegible]
पुनर्जन्म की कहानी प्रत्यक्ष हो गयी। [illegible]
श्री इशामतउल्ला अन्सारी जब इकरार [illegible]
यहाँ पढ़ाने गये, तब उनके पचवर्षीय [illegible] ने [illegible]

ई घुस कर उसकी विधवा पुत्रवधू फातिमा का हाथ पकड़ लिया और कहा कि "तुम तो मेरी बीवी हो, फातिमा!" फातिमा बच्चे के मुख से अपना नाम सुन कर बेहोश हो गयी। कहते हैं कि लड़के की सारी पूर्व स्मृतियाँ जाग उठी और वह बिना किसी के बताने ही अपरिचित मकान में इस तरह प्रवेश करते हुए कि जैसे उसीका जाना पहचाना घर हो, पूर्वजन्म की बीबी के भीतरी कक्ष में जाकर पूर्व परिचित अपनी कुर्सी पर बैठ गया और फातिमा के श्वसुर को अब्बा अब्बा कह कर पुकारने लगा। फातिमा पान लगा रही थी, लड़के ने जाते ही कहा, "फातिमा, हम भी पान खायेंगे।" पता लगा कि फातिमा के पति फारूख की मृत्यु पाँच वर्ष पूर्व हुई थी। जब सभी लोग एकत्र हो गये, तब लड़के ने पूर्वजन्म की कहानी सुनाते हुए ऐसी सारी बातें सुनायीं, जो केवल फातिमा और फारूख ही जानते थे। उसने कहा कि मैंने अपने भाई को, जो पाकिस्तान में है, ५ हजार रुपये भेजे थे और ३ हजार बैंक में जमा है। उपयुक्त व्यक्ति लाहौर में व्यापार करता है और फारूख का इरादा भी वहीं रहने का था, इसका रहस्योद्घाटन लड़के ने किया। उसने पहले के भाई उमर आदिल का नाम भी बताया। यह भी कहा कि मेरे श्वसुर के यहाँ से एक बन्दूक चोरी गयी थी, जो वास्तव में सच्ची घटना है। लड़के की बातें सुनकर उसके पूर्वजन्म के पिता ने कहा कि यद्यपि मैं पुनर्जन्म में विश्वास नहीं करता, तथापि जो आँखों के सामने देख रहा हूँ, उससे इन्कार भी नहीं कर सकता।

—'नवभारत टाइम्स' (हिन्दी)
ता० २८.६.६१ रविवार

[८]

हारीत। ठक्कर शिवराम की ८ वर्षीया पुत्री हीरा अपने पूर्व जन्म की कथा बताती है। उसके पिता उसे लेकर हारीज आये हैं।

बहुत से लोग उसे देखने आते हैं और कितने ही श्रद्धालु लोग तो उसके समक्ष पगड़ी और टोपी उतार कर हाथ जोड़ कर उसका दर्शन करते हैं।

यहाँ वह अपने पूर्व जन्म की बहन से मिलने आयी है। उसने अपनी बहन से बचपन की कितनी ही बातें कहीं।

—जनसत्ता
१२ जनवरी १९६१

[४]

एक बार मुझे रत्नागिरि जिले के एक छोटे से गाँव में जाने का अवसर मिला। वहाँ जहाँ मैं रुका था उसके पड़ोस में ही सदाशिव नामक एक ब्राह्मण रहता था। सदाशिव को एक आठ वर्षीया पुत्री थी। उसका नाम रम्भा था। एक दिन उस घर में शोर सुनकर जब मैं वहाँ गया, तो पता चला कि, रम्भा मद्रास जाने के लिए जिद कर रही है और कई दिनों से उसने खाना खाना भी बन्द कर रखा है। उसका कहना थी कि पूर्व भव में वेंकटराव नामक उसे एक पुत्र था और वह उससे मिलना चाहती है। मेरे प्रस्ताव पर सदाशिव मद्रास जाने को तैयार हो गया और दूसरे दिन हम तीनों मद्रास चल पड़े।

मद्रास पहुँच कर हम लोगों ने एक ताँगा किया और [illegible] रास्ते से चल कर एक बँगले पर पहुँचे। उस समय वेंकटराव समाचार पत्र पढ़ रहे थे। रम्भा ने वेंकटराव से इस रूप में [illegible] अनेक ऐसी बातें बतायीं कि, वेंकटराव को भी आश्चर्य हुआ और [illegible] भी उसे अपनी माता होना स्वीकार करना पड़ा।

[६]

उत्तरी प्रदेश के एक ग्राम के बनिया की मुन्नी-नामक दो वर्ष की लड़की अपने २ पूर्व भवों की कथा बताती है। वह कहती है कि, वह पूर्व भव में उसी ग्राम के केशवदेव नामक ब्राह्मण की पुत्री थी और ११ वर्ष की उम्र में खाना बनाते समय साड़ी में आग लग जाने से मृत्यु को प्राप्त हुई थी। केशवदेव ने बात स्वीकार की।

उससे पूर्व भव में वह अपने को मथुरा के एक चौबे परिवार की कन्या बताती है और उस भव के अपने पुत्र का नाम आदि भी सही सही बताती है।

—किस्मत

दीपोत्सवी अंक संवत् २०१९

[७]

'ब्राह्मणवाणी' नामक एक मासिक पत्र के सम्पादक गोस्वामी श्री ब्रह्मदत्त ने शिकारपुर के एक पाँच वर्ष के बच्चे की कथा की पुष्टि की है जो अपने पूर्व भव की कथा बताता है। उस बच्चे की कथा काशी से प्रकाशित 'सन्मार्ग' में भी प्रकाशित हुई थी।

—किस्मत

दीपावली अंक १९६० ई०

